सर्वोपरि: जिनागमम् ।

सन्मति ग्रंथमाला, सुलतानपुर

(हिंदी विभाग - पुष्प १)

कड़वे सच

कृतिकार - निर्ग्रन्थ मुनि सुवन्द्यसागर

संस्करण क्र. ११
(संशोधित एवं परिवर्धित)
सन - २०१३

✻ प्रकाशक ✻

आत्मनंदी ग्रंथालय
सुलतानपुर ता. लोणार जि. बुलड़ाणा (महा.)
मो. : ०९७६६१३१३५१
(email- atmanandi.granthalay@gmail.com)

मूल्य ४० रुपये

✻ प्रकाशन पुण्यार्जक ✻

✻ टाईप सेटींग ✻
चिंतामणी प्रिंटींग प्रेस, डोणगांव मो.९४२१३९६९०५
अक्षय जम्बो झेरॉक्स, नांदेड मो. ९४२१८६१०२२
(email- akxerox@gmail.com.)
विराग कॉम्प्युटर, अंबड मो. ९८२२६८४०६३
सतीश शान्तिलालजी बोराळकर मो. ९७६६१३१३५१
(email- satjain.siddhapur@gmail.com.)

✻ मुद्रक ✻

- कॉपीराईट -
सब के लिए
विशेष सूचना-जो व्यक्ति/संस्था यह पुस्तक पुन:प्रकाशित करना चाहते हैं, उन्हें यथासंभव प्रेस कॉपी नि:शुल्क दी जायेगी ।
संपर्क : **सतीश शान्तिलालजी बोराळकर मो. ९७६६१३१३५१**
email- satjain.siddhapur@gmail.com.

प्राप्तिस्थान

✽ श्री. आत्मनन्दी ग्रंथालय ✽

द्वारा – श्री. सतीश शान्तिलालजी बोराळकर
श्री. महावीर दिगंबर जैन मंदिर, बस स्थानक के पास,
सुलतानपुर, जि. बुलड़ाणा मो. ९७६६१३१३५१
(email id- atmanandi.granthalay@gmail.com/
satjain.siddhapur@gmail.com)

✽ जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✽

मो. ९४२१०४००२२ फो. ०२१७/२३२०००७

✽ श्री. संजय बाकलीवाल ✽

२१, सीताराम पार्क, बड़े गणपती के पास,
इंदौर (म.प्र.) मो. ९८२६५४७८८३

✽ श्री पार्श्वनाथ ग्रंथ भांडार ✽

श्री पार्श्वनाथ ब्रम्हचर्याश्रम गुरुकुल
एलोरा, ता. खुलताबाद, जि. औरंगाबाद
फोन : (०२४३७) २४४४३२

✽ श्री. दिगंबर जैन अतिशय क्षेत्र नेमगिरि ✽

जिन्तुर जि. परभणी

✽ श्री. निलेश धोंगड़े ✽

जलगांव (महाराष्ट्र) मो. ९५४५९५३६६५

अनुक्रमणिका

✽ नमोस्तु शासन की प्रभावना — i
✽ मुनिश्री के प्रति दो शब्द — ii - iii
✽ प्रस्तावना — iv- ix
१. आमुख — १-२१
  ✽ शाश्वत धर्म — १
  ✽ भूल कहाँ ? — २
  ✽ सद्गुरु — ४
  ✽ विकल्प — ६
  ✽ त्यागी की शोभा — ७
  ✽ नमोस्तु शासन के शत्रु — ८
  ✽ विभाजन की ओर — १०
  ✽ जिम्मेदार कौन ? — ११
  ✽ प्रश्न — ११
  ✽ उपाय — १२
  ✽ स्थितिकरण — १३
  ✽ गृहस्थ भी समझा सकते हैं — १४
  ✽ सत्यासत्य का निर्णय — १५
  ✽ कुगुरु-सेवा का परिणाम — १९
  ✽ मौनं अर्धसंमतिः — २०
  ✽ खंडन की आवश्यकता क्यों ? — २१
  ✽ आगमप्रेमियों का कर्तव्य — २१
  ✽ आगमानुसारी आचरण का फल — २१
२. विडम्बना और चेतावनी — २२-२६
  ✽ साधु कौन ? — २२
  ✽ विडम्बना — २३
  ✽ दुख की बात — २४
  ✽ कुपात्रदान का फल — २५
  ✽ दातार को चेतावनी — २६

३. परिग्रह २७-४०
* क्या है आचेलक्य ? २७
* ताकि भक्तों का दिल न टूटे २९
* परिग्रह का फल - निगोद ३१
* ममत्वभाव से ही परिग्रह ३२
* अपवाद मार्ग का अर्थ स्वच्छन्द वृत्ति नहीं है ३३
* उपकरण ३५
* नॅपकीन रखने में दोष ३७
* चष्मा और घड़ी ३८
* कुदान का फल ३९
४. पत्थर की नाव ४१-५३
* जिनधर्म के विराधक ४१
* श्रमणों को दूषित करने वाले कार्य ४१
* मुनियों की दुर्गति ४३
* अवन्दनीय ४७
* शास्त्रानुसार चर्या होने पर... ४९
* अरिष्ट निवारण ५०
* ग्रहशान्ति - एक ढकोसला ५१
* लक्ष्मी-लाभ ५२
५. आहार ५४-७२
* आहारचर्या ५४
* शुद्ध आहारचर्या का महत्त्व ५६
* साधु आने के बाद... ५७
* आहार के समय इशारे ६१
* ठंडा पानी ६२
* दंतमंजन ६४
* प्रसाद ६६
* आहार... कितनी बार ? ६७
* आहार के बदले में... ६८
* क्षुल्लक जीवन में परस्परा वश अपार विघ्न ७०

६. प्रकीर्णक ७३-९८
* अस्नान और तेलमालिश ७३
* केशलोच और उपवास ७५
* परिवार और संस्था ७६
* धर्म के असली दुश्मन ७८
* व्यापार में सलाह ७८
* क्षेत्रविकास और समाजसेवा ७९
* पीछी के साथ नहीं ८२
* आनन्दयात्रा ८४
* नकली भक्त ८८
* जन्मदिवस ९०
* सर्वधर्मसंमेलन ९१
* समाचारपत्र ९५
* विहार ९५
* विवाह ९७
* मुनि भी दीक्षा दे सकते हैं ९८
७. पंचम काल में मुनि ? ९९-१२२
* क्या कहता है आगम? ९९
* मुनि की पहचान १००
* पूज्यता का आधार १०१
* द्रव्यलिंगी से व्यवहार १०३
* गृहस्थ का कर्तव्य १०६
* दान के अभाव में १०८
* घर या श्मशान? ११२
* दान में सावधानी ११४
* कौन कब दे ? ११७
* विघ्न का फल ११८
* कीजे शक्तिप्रमाण ११९
* उद्दिष्टत्याग किसका ? १२१

८. उपसंहार १२३-१४८
* तर्क नहीं कुतर्क १२३
* जिनवाणी की भक्ति १२४
* त्याग नहीं भोग १२६
* बगुला भगत १२७
* अधर्मात्मा १२८
* हितशत्रु और हितैषी १२९
* संगति १३१
* पांडित्य का दूषण १३२
* क्या जमाना खराब है ? १३३
* लोकरुचि नहीं लोककल्याण को देखकर उपदेश १३३
* समाज का दुर्भाग्य १३४
* मिथ्यादृष्टि १३४
* प्रभावना १३६
* प्रभावना का उपाय १३८
* गिरगिट १३८
* इतना ही कहना है कि १४०
* आवाहन १४२
* उपदेश का अभिप्राय १४४
* उनके प्रमाण क्यों ? १४५

* अन्तिम मङ्गल १४९
* संदर्भ ग्रन्थ १५०-१६१
* २४ तीर्थंकर स्तवन १६२-१६३
* सिद्धिप्रद स्तोत्र १६४-१६७
* विशेष ज्ञातव्य १६८

नमोस्तु शासन की प्रभावना

आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज से दीक्षित मुनि सुवन्द्यसागर महाराज ने शास्त्रों के कड़वे सच अनुभूत कर अक्षुण्ण ज्ञानोपयोग की धारा में अवगाहन करते हुए श्री नेमिनाथ दिगंबर जैन मंदिर, बोरगांव (मंजू) जिला अकोला (महाराष्ट्र) में हृदयग्राही '**कड़वे सच**' के द्वारा चरणानुयोग के मूल प्रतिपाद्य का संकलन किया है।

पूज्य मुनिश्री ने **कड़वे सच** के माध्यम से निजात्मतत्त्व प्राप्त करने के पुरुषार्थ का मार्ग अर्थात् मुनिमार्ग को वर्तमान विपरीत परिस्थिति के मध्य पतनोन्मुख होते हुए देखकर उसे पुन: शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पालन करने का अथक प्रयत्न किया है। तथा निरन्तर उसी चिरन्तन मार्ग पर चलने में अब भी प्रयत्नरत है। परन्तु लोगों में तथा कतिपय साधुओं में मुनिचर्या के प्रति गहरा अज्ञान और अनास्था होने से जिनधर्म को धूमिल होते हुए देखकर उनके मन की करुणा **कड़वे सच** के माध्यम से प्रस्फुटित हुई है। इस कृति का लाभ लेकर गृहस्थ और साधु पतन से विमुख होकर सन्मार्ग का प्रकाश प्राप्त करें जिससे सभी का कल्याण हो।

संदर्भ ग्रन्थों की सूचि को एक नजर देखने मात्र से ही ध्यान में आता है कि इस कृति में मुनिश्री ने प्राचीन-अर्वाचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत मूलाचार, प्रवचनसार, धवला, भगवती आराधना, तत्त्वार्थसूत्र आदि **दो सौ से अधिक** शास्त्रों का सार गर्भित किया है। यह संपूर्ण कृति भगवान् महावीर की दिव्यध्वनी से उत्पन्न आगम प्रमाणों से भरी हुई है। गागर में सागर इस उक्ति को यथार्थ करनेवाली **इस कृति को पढ़ने से सद्गुरु और कुगुरु इनका भेद स्पष्ट होकर वर्तमान में उत्पन्न अनेक शंकाओं का निराकरण हो जायेगा।** गुरुदेव की यह कृति निश्चित रूप से जिनवाणी-श्रद्धानियों की प्रशंसा प्राप्त करेगी ।

हमारी भावना है कि इस **कड़वे सच** का पठन घर-घर में होकर उसके अंदर छुपी हुई मधुरता को प्रत्येक जीव प्राप्त करें। शुभं भवतु !

ब्र. कमलश्री जैन, दीपिका जैन

मुनिश्री के प्रति दो शब्द ..

भक्ति जीवन के लिए वह रसायन है जो जीवन में अमूलाग्र बदल कर सकती है। भक्ति के रस में मनुष्य सारी दुनिया को ही नहीं बल्कि अपने आपको भी भूल सकता है। भक्ति के भाव में इंद्रियों के विषय भी भूल सकता है। भक्ति के भाव में इंद्रियों के विषय शमन हो जाते हैं। विषयों के शमन होते ही मस्तिष्क की कोशिकाएँ चार्ज हो जाती हैं, जिससे हमारा ज्ञान दिनों-दिन बढ़ता चला जाता है। भक्ति सहनशक्ति, साहस आदि कई गुण पैदा कर सकती है।

आचार्य सुविधिसागरजी से दीक्षाप्राप्त ओजस्वी वक्ता, शास्त्रोक्त निर्भिक उपदेशक परम पूज्य मुनिश्री सुवन्द्यसागरजी महाराज इनका वर्ष २००८ का पावन वर्षायोग अकोला जिले के बोरगांव (मंजू) में जिस प्रभावना के साथ हुआ वह शब्दातीत है। परन्तु **इस ऐतिहासिक वर्षायोग का खर्च अत्यल्प हुआ। (मात्र १२०० रुपये)**। अगर इतने कम खर्च में किसी मुनि का वर्षायोग हो सकता है तो छोटी से छोटी समाज, कसबे से कसबा, नगर से महानगर तक की कोई भी समाज अपने यहाँ वर्षायोग करवा सकती है।

मुनिश्री सुवन्द्यसागरजी की मुनिचर्या आगमोक्त है। वे निस्पृही तथा परिग्रह रहित हैं, जैसा कि हमें आगम में पढ़ने को मिलता हैं कि साधु अपने पास तिलतुष मात्र भी परिग्रह नहीं रख सकते हैं। आगम पढ़ने के बाद लगा कि यह साधु स्वयमेव एक जीवन्त आगम है। उन्होंने हर आवश्यक हर आगमोक्त मुनिचर्या को अपने जीवन में उतार लिया हैं। मुनिश्री गृहस्थों से कथा-विकथा में नहीं पड़ते हैं। वे न तो अखबार पढ़ते हैं, न हि किसी भी प्रकार की लौकिक किताबें पढ़ते हैं, यंत्र-तंत्र में उलझते नहीं हैं। बल्कि आगमयुक्त शास्त्रों का अध्ययन करते रहते हैं। श्रावक अगर किसी प्रकार का धार्मिक शंका-समाधान करने के लिए आते हैं, तो उन्हें आगम का प्रणाम दे देते हैं, अपने मन से कुछ भी नहीं बताते हैं।

मुनिश्री को टीबी जैसा दुर्धर रोग हुआ था, फिर भी न हि किसी प्रकार की अशुद्ध दवाई लेते थे, न हि कोई तेल लगाया। नैपकीन का भी कभी उपयोग नहीं किया। इसके बावजूद भी अपने धैर्य को कम नहीं होने दिया। अपनी आवश्यक क्रियाओं मे भी कभी शिथिलपणा नहीं आने दिया। हम गृहस्थों को धर्म से जोड़े रखे रहे। गृहस्थ भी उनसे जुड़े रहे। मुनिश्री की भाषा व व्यक्तित्व में चुंबकीय शक्ति है। बोरगांव (मंजू) समाज उन्हें जिनधर्म प्रभावक संत कहने लगी।

मुनिश्री की दीक्षा ५ फरवरी २००४ को गजपंथा में हुईथी। मुनिदीक्षा से लेकर अब तक मुनिश्री ने आगमोक्त शास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। वे अद्‌भुत शब्द विज्ञान के धनी है। उनमें लिखने-पढ़ने का ज्ञान, बेजोड़ तर्कशक्ति, सरलता, सौम्यता, सहजता होकर भी पंथवाद से दूर रहकर केवल **निर्ग्रन्थ** रहते हुलए अद्वितीय अध्ययन रत होकर वे ''**कड़वे सच**'' को हम सब के बीच लेकर आये हैं। मुनिचर्या संबंधी हमारी भ्रांतियाँ हटाने के लिए मुनिश्रीने तार्किक एवं आगमिक **कड़वे सच** इस शास्त्रसार रूप लघुग्रन्थ का संकलन किया हैं।

कड़वे सच यह अतिशय महत्त्वपूर्ण कृति हम सभी तक पहुँचानेवाले परम पूज्य मुनिश्री सुवन्द्यसागरजी महाराज है। हमारी समाज ऐसे गुरुवर के चरणों में विनम्रता पूर्वक भक्तियुक्त नमोस्तु करती है, जिनके शुभाशीर्वाद से हम सभी बोरगांव (मंजू) वासियों को जिनधर्म का सम्यग्ज्ञान हुआ।

जिनका परम पावन चरित्र जल निधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में हम सब न पावे पार हैं।
बस वीतराग विज्ञान ही जिनके कथन का सार है।
उन वीतरागी गुरुवर को वंदना शत-शत बार है।।

सौ. सारिका किशोर अजमेरा
बोरगांव (मंजू), जिला- अकोला (महाराष्ट्र)
मो. ८९८३७०४२०९

प्रस्तावना

एक लोकोक्ति है – दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जनं तदनन्तरम् ।

''**कड़वे सच**'' इस कृति की निर्मिति में सज्जनों से अधिक वे लोग कारण बने हैं जो ज्ञात/अज्ञात भावों से साधुओं के व्रतों को दूषित करने में एवं उन्हें सुखशील बनाकर उनके चारित्र को नष्ट करने का दुष्कर्म कर रहे हैं।

पंचम काल की दुहाई देकर साधु को मोबाईल, नॅपकीन, अपने फोटो आदि रखने/बाँटने की प्रेरणा देना, आहार के समय गरम वस्तुएँ बनाने के लिए गॅस जलाना अथवा फल काटना, अंजुलि छोड़ कर बैठने के बाद भी सौंफ आदि देने का प्रयत्न करना, विधि नहीं मिलने पर थोड़ी देर बाद या सामायिक के बाद दोपहर में पुन: दूसरी बार आहार के निकलने के लिए दबाव लाना, आहार के बाद लौंग, काड़ी आदि से दाँतों में लगे अन्नकण निकालने अथवा नमक या मंजन से दाँत साफ करने तथा पानी, नॅपकीन से शरीर पोछने की जिद करना, अकारण घी-तेल आदि की मालिश अस्नान मूलगुण का भंग होने से महापाप है ऐसा शास्त्रवचन दिखाने पर भी तेल से मालिश करने की जिद-जबरदस्ती करना आदि बाते अब आम बन चुकी हैं । मूढ़ लोग इन शास्त्रविरोधी दुष्कृत्यों को ही वैयावृत्ति समझते हैं। वे इस बात को नहीं समझते कि ''हमारी भावना है'' ऐसा कहने से किसी को साधुओं के व्रतों में दोष लगाने का अधिकार तो नहीं मिलता।

वैयावृत्य का वास्तविक अर्थ है चारित्रपालन में सहायता करना। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आ. समन्तभद्र **''दानं वैयावृत्यम्''** (१११) ऐसी व्याख्या करते हुए आहारदान, औषधदान, उपकरणदान तथा वसतिकादान के भेद से चार प्रकार का वैयावृत्य प्रतिदिन करने के लिए कहते हैं । तथा चारित्रसार में भी कहा है – '**विपरीत परिणाम तथा विपरीत क्रियाओं से निवृत्त होने का उपदेश देना वैयावृत्य है ।**'

परन्तु घी-तेल लगाए बिना जिन्हें वैयावृत्ति करने की 'मजा' ही नहीं आती ऐसे **लोग आहारदान आदि अतिशय श्रेष्ठ कार्यों में अनेक बहाने बनाते हैं, क्वचित् एक-दो दिन चौका लगाने मात्र से अपनी इति-कर्तव्यता समझ लेते हैं।**

प्रत्येक मनुष्य को पद्मनन्दि पञ्चविंशति: में कथित निम्न बात पर गंभीरता से विचार करना चाहिए –

''जो प्रतिदिन अतिथियों को आहारदान नहीं देता है, उससे तो वह कौआ अच्छा है जो कही पर थोड़ी सी खुरचन (अन्न के कुछ कण) देखता है तो कांव-कांव करके अन्य कौओं को बुलाता है और वह थोडा सा ग्रास भी बाँट कर खाता हैं । जिस घर में प्रतिदिन मुनियों को आहार दिया जाता है वह घर ही घर है अन्यथा वह घर उस गृहस्थ को बाँध कर रखने के लिए बनाए हुए कारागृह के समान है ।''

परन्तु अनेक गृहस्थ निर्दोष आहारदान जैसे प्रतिदिन करने योग्य हितकारी कार्यों में अनेक बहाने बनाते हुए उनसे विमुख रह कर दुर्गति में ले जाने वाला संयमघाती धन, नॅपकीन, मोबाईल, मोटर आदि देना, फोटो छपाना आदि कुदान उत्साह से करते हैं ।

ये ही वे लोग हैं जिन्होंने शास्त्रोक्त पद्धति से आचरण करने के मेरे प्रयत्नों को दबा कर मुझे शिथिलाचारी बनाने का प्रयत्न करने में कोई कसर नहीं छोड़ी । परन्तु जैसे-जैसे मुझ पर उनका दबाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनका खंडन करने के लिए मैं अधिकाधिक आगम-प्रमाण खोज कर उनके सामने रखता गया।

कुछ लोगों का अज्ञान और बहुत से लोगों की ज्ञानी होकर भी शास्त्रविरुद्ध क्रियाओं के समर्थन में दुर्बुद्धि तथा तदनुसार मुझ जैसे शास्त्रभीरु साधुओं को आगमानुकूल चर्या करने से च्युत करने के उनके प्रयत्नों का निराकरण करके शास्त्रानुसार आचरण की पुनःप्रतिष्ठा करने के लिए ही मैने मुनिचर्या से संबंधित भ्रान्तियों रूप ज्वर का समूल विनाश करने के लिए कड़वी औषधि एवं धर्मभक्त परन्तु अज्ञानांधकार में पथभ्रष्ट हुए समाज को सत्पथ दिखाने में समर्थ ऐसे कुछ आगम प्रमाण कुछ धर्मप्रेमियों को दिखाए।

बार-बार दुहराया जाने से सच लगनेवाले झूठ का भी आगम-सूर्य के आलोक में पर्दाफाश हो ही जाता है । वे प्रमाण देखकर सब की प्रतिक्रिया ऐसी होती थी मानों दुनिया का आठवां अजूबा देखा हो ।

सब यही कहते कि **''शास्त्रों में ऐसा लिखा है यह बात आज तक हमे किसी भी साधु ने बताई ही नहीं । आज पहली बार पता चला की हम जिन बातों को धर्म समझ रहे थे, वे बाते दुर्गति करवाने वाली हैं। क्या उन साधुओं ने ये शास्त्र नहीं पढ़े हैं ?''**

यह सब देखकर बोरगांव (मंजू) के वर्षायोग (सन २००८) में सौ. नूतन अजमेरा, सौ. सारिका अजमेरा तथा अन्य श्रावकों ने भी कई बार इन आगम प्रमाणों को एकत्रित करके एक पुस्तक छपाने की इच्छा जताई । प्रारंभ में तो मैं उनसे असहमत था क्योंकि मुझे अपनी कोई पुस्तक छपवाने में रुचि नहीं थी । मैने कभी भी अपने फोटो तो क्या छोटा-सा स्टीकर या बैनर भी नहीं छपाया। यहाँ तक की वर्षायोग की पत्रिका भी कभी नहीं छपवाई ।

परन्तु दर्शनार्थियों की शंकाओं का समाधान करने के लिए जब भी मैं आगम प्रमाण दिखाता, सब लोग उनको एकत्रित करके पुस्तक छापने की भावना प्रकट करते थे ।

अन्तत: मुझे भी प्रतीत हुआ कि ऐसी पुस्तक छपने से शास्त्रों में बंद सच्चाईयाँ एवं विस्मृत होती जा रही मुनिचर्या पुन: जन-जन तक पहुँचेगी जिससे अज्ञान नष्ट होकर मुनिचर्या मे संबंधित अनेक भ्रान्तियाँ दूर हो सकती है तथा आगमानुकूल वर्तन करने के इच्छुक साधुओं को भी इससे लाभ होगा। तब मैने पुस्तक छपवाने के प्रति अपने विरोध का संकोच किया और वर्तमान के कुछ ज्वलन्त प्रश्नों से संबंधित कुछ आगम प्रमाण क्रमवार संकलित किये। कुछ जगह आवश्यक स्पष्टीकरण भी लिखे, परन्तु अधिकतर स्थानों में मूल शास्त्रों के उल्लेख उन्हीं शब्दों में ही रखे ताकि इस लघुग्रन्थ की प्रामाणिकता बनी रहे । शास्त्रों से उद्धृत परिच्छेदों में ''आदि'' शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उस-उस स्थान पर कोष्टक () बनाये हैं ताकि मूल ग्रन्थों के प्रमाण भी यथावत् बने रहे और पाठकों को सही एवं विस्तृत अर्थ का ज्ञान भी हो।

इन सब बातों के एकत्रित फल स्वरूप **''कड़वे सच''** का सृजन हुआ है।

''कड़वे सच'' के सृजन का उद्देश्य किसी की निन्दा हो ऐसा नहीं है । जिस कारण से परम पवित्र मुनिमुद्रा की छवि धूमिल होकर मुनियों के प्रति समाज की श्रद्धा घटती जा रही है, वह कारण दूर होकर दिग्भ्रमित साधु और श्रावक दोनों भी सत्य को समझे तथा निर्ग्रन्थ मार्ग की पुन:प्रतिष्ठा हो इस मंगल भावना से इसका निर्माण हुआ है । इस कृति का सृजन किसी व्यक्ति के विरोध के लिए नहीं अपितु अपप्रवृत्ति के निराकरण के लिए हुवा है। मुझे विश्वास है कि यह कृति पढ़ने से साधुओं के प्रति श्रद्धा घटेगी नहीं अपितु शास्त्रोक्त आचरण करनेवाले साधुओं के प्रति श्रद्धा बढ़ेगी ।

मेरे खराब हस्ताक्षर, अनुभवहीनता एवं अनियोजित कार्य के कारण इसकी प्रेस कॉपी बनाना अतिशय कठिन कार्य था । परन्तु श्री. संदीप एवं कु. बाली लोखंडे इन भाई-बहन की जोड़ी ने वह सफलता से पूर्ण किया तथा श्री ललितकुमार अजमेरा एवं परिवार की ओर से यह छपवाया गया ।

वर्षायोग समापन के बाद कुछ साधुओं से भेट हुई। उनके कुतर्क सुनने पर कुछ और विषयों पर लिखने आवश्यकता प्रतीत हुई । इसलिए पूर्व संस्करण में कुछ परिवर्तन करते हुए मैने उसमें कुछ नवीन विषय भी जोड़े । इसके फल स्वरूप **''कड़वे सच''** का यह परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हो रहा है ।

ग्रन्थ निर्मिति का कथन करने के बाद अब मैं अपने उन गुरुओं के उपकार स्मरण करता हूँ, जिनके कृपाप्रसाद से ही मैं इस योग्य बना हूँ -

मुझे मुनिदीक्षा प्रदान करनेवाले मेरे दीक्षा गुरु आचार्य श्री सुविधिसागर जी के उपकार मैं कभी नहीं चुका पाऊँगा । उन्होंने जिस प्रकार से मुझे उत्कृष्ट शिक्षा देकर एवं अपने ज्ञान तथा अनुभवों का विशाल भंडार मुझ पर लुटाकर मुझे उपकृत किया है, क्वचित् ही किसी शिष्य को ऐसा सौभाग्य मिला होगा । यह कृति- **''कड़वे सच''** उनके उस ऋण का एक छोटा-सा अंश मात्र है।

मुनिकुञ्जर आचार्य श्री आदिसागर जी मुनिराज (अंकलीकर) की श्रेष्ठ मुनि-परम्परा के पट्टाधीश- परम पूज्य तपस्वी सम्राट एवं वर्तमान के ज्येष्ठतम आचार्य श्री सन्मतिसागर जी मुनिराज के भी मुझ पर अनन्त उपकार हैं। दीक्षागुरु से मुझे सुविधि प्राप्त हुई है तो अपर गुरु से सन्मति प्राप्त हुई है। उन्होंने मुझे दी हुई सन्मति के कारण ही मैं पतन की ओर ले जाने वाले वर्तमान मतप्रवाह एवं विपरीत परिस्थितियों से निरन्तर जूझता हुआ भी सुविधि से मुनिपद का निर्वहन कर पा रहा हूँ।

रीछा (राजस्थान) की घटना है - उस समय मैं नई अवस्था का मुनि था। एक दिन मैने आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज से पूछा- ''महाराज जी ! मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की आवश्यकता है। परन्तु कभी ऐसा प्रसंग हो कि ज्ञान और चारित्र इन दो में से एक को चुनना है, तब मुझे क्या करना चाहिए ?''

''**पंचायारे अप्पं परं च जुंजइ सो आइरियो ।**'' इस व्याख्या को सार्थक करते हुए आचार्यश्री ने अतिशय सुन्दर एवं समर्पक उत्तर दिया। उन्होंने कहा - **''सम्यक्चारित्र सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान कर्मों के क्षयोपशम पर निर्भर है। चारित्र अच्छा रहेगा तो ज्ञान स्वयं प्राप्त हो जाता है। इसलिए ज्ञान कम मिले तो कोई बात नहीं परन्तु अपने चारित्र को सँभालना अधिक आवश्यक है।''**

उनके द्वारा दिखाया गया यह सम्यक् प्रकाश ही मुझे अब तक मार्गदर्शन कर रहा है। ऐसे परमोपकारी सद्‌गुरु के चरणों में मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

अन्तमें कुछ सद्धर्मानुरागी सज्जनों का उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूँ - सौ. वर्षा चवरे (अकोला) सतत स्वाध्याय करने से स्थितिकरण अंग के पालन में कुशल हुई है। मुझे भी उसका लाभ हुआ है। इन्दौर निवासी श्री. संजय बाकलीवाल बहुत धार्मिक व्यक्ति है। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, ''महाराज जी ! सारा जग बदल जाये, परन्तु आप मत बदलना। आज आपकी चर्या आगमानुसार है, उसे हमेशा ऐसे ही बनाये रखना।''

बोरगांव (मंजू) की सौ. सारिका अजमेरा ने भी कहा था, ''२५ वर्ष बाद भी आप आज जैसे हैं वैसे ही रहना। आज हमे सुधार कर कल स्वयं मत बदलना।'' यह भावना केवल उनकी ही नहीं अपितु समस्त बोरगांववासियों की है। मुझे विश्वास है कि इन अपवादात्मक धर्मात्माओं के ये छोटे-छोटे वाक्य मुझे असावधानता के क्षणों में सँभाल लेंगे ।

संघस्थ ब्र. कमलश्री का अनुल्लेख निश्चित रूप से मेरी कृतघ्नता ही होगी। मेरे रत्नत्रय को कोई आँच न लगे इस लिए उसने जो कुछ किया, जो कुछ सहा, वह सब शब्दातीत है। ब्र. शैलेश जैन, ब्र. विनीता जैन, दीपिका जैन, प्रीति तथा निलेश धोंगड़े एवं श्री. अतुल कलमकर आदि भी निरन्तर मेरे रत्नत्रय की चिन्ता करते रहते हैं। बोरगांव (मंजू) की समाज में से किसी एक नाम लेना, दूसरों पर अन्याय ही होगा। वहाँ की समस्त समाज ने ब्र. कमलश्री के साथ भरपूर किन्तु निर्दोष वैयावृत्ति करके मुझे टीबी जैसी घातक व्याधियों से उबार कर मुझे नया जन्म दिया है।

इस कृति के सृजन में जिन-जिन महानुभावों की कृतियों का उपयोग किया गया है, तथा इसके अक्षर-विन्यास, सुधार, मुद्रण, प्रकाशन आदि कार्यों में जिन-जिनने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग दिया हैं, उन सभी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

''शास्त्रों में जो प्रतिपादन होता है, वह समीचीन धर्म का ही प्रतिपादन होता है क्योंकि समीचीन धर्म-सत्य की परम्परा अनादि-अनन्त होती है। उसे देश-काल की परिधि में बांधा नहीं जा सकता ।'' बस, इस सत्य का विवेचन करने के लिए निर्मित इस लघुकाय ग्रन्थ में जो कुछ भी अच्छा है, उसका श्रेय पूर्वाचार्यों को है। इस कृति के वास्तविक स्रजेता वे ही हैं, मैं तो उनका संकलक मात्र हूँ। मेरी अल्पज्ञता के कारण इसमें त्रुटियाँ रहना संभव हैं। उनका दोष मुझ जड़बुद्धि का है ऐसा समझ कर पापभीरु विद्वज्जन जिनवाणी के अनुसार उसे सुधार कर पढ़े ।

भद्रं भूयात् ।

- निर्ग्रन्थ मुनि सुवन्द्यसागर

१. आमुख

मंगलाचरण

श्री सन्मति को नमन कर, पाया सन्मति लाभ ।
सन्मति-सुविधि संगम ही, है सुवन्द्य पद राज ।।१।।
कड़वे सच कड़वे सही, किन्तु श्रीफल समान ।
विचार कर जानों यही, जैन धर्म की शान ।।२।।

शाश्वत धर्म

शाश्वत धर्म में यत्किंचित् भी बदलाव संभव नहीं है क्योंकि नियमों में बदलाव आंशिक सत्यता का निदर्शक होता है । सच्चा धर्म कभी आंशिक सत्य नहीं होता है । श्रमण धर्म सर्वांश एवं सार्वकालिक सत्य है। इस अवसर्पिणी के तृतीय काल में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने मुनियों को जिन २८ मूलगुणों का पालन करने का उपदेश दिया था वे ही २८ मूलगुण उसी रूप में पंचम काल के अन्त में होनेवाले अन्तिम असम्प्राप्तासृपाटिका संहननधारी वीरांगज मुनि के समय भी होंगे। **अत: पंचम काल अथवा परिस्थिति की आड़ लेकर मूलगुणों में अथवा मुनिचर्या में परिवर्तन अथवा संशोधन करने का विचार भी जैन धर्म से द्रोह करना है।**

बीसवी सदी में अनेक संमोहक शोध हुए, जिससे पंचेन्द्रियों को लुभानेवाली भौतिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने लगी । सहजता से उपलब्ध होनेवाली इस भौतिक सामग्री ने मनुष्यों को आमोद-प्रिय तथा विलासी बना दिया। संसारी जीवों को भोगसामग्री का आकर्षण सदा ही रहा है किन्तु जैन मुनि उससे सदा अलिप्त ही रहे हैं। अगण्य राजाओं और अनेक चक्रवर्तियों ने भी अपनी विशाल राज्यसम्पदा को जीर्ण तृणवत् समझकर सहजता से समस्त वैभव एवं सुख-साधनों का त्याग कर अकिंचन मुनिदीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याण किया है।

आज अनेकानेक विद्वान् तथा त्यागी-व्रती और मुनि भी गहन आगमावगाहन किये बिना दिग्भ्रमित हो रहे हैं, उनके भ्रम मिटाना ही वर्तमान में सबसे बड़ा उपकार है ।

भूल कहाँ ?

दिगंबर जैन मुनि वस्त्र, कुटुम्ब-परिवार व सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी होते हैं। (आध्यात्मिक धर्म प्रवचन - पृष्ठ ९५) इतने बड़े-बड़े तीर्थंकर-चक्रवर्ती अपना सारा धन, वैभव, कुटुम्ब-परिवार छोड़ कर आ गये, फिर उस ओर नहीं देखा, घर का समाचार नहीं पूछा । (पृष्ठ ११०)

सांसारिक आकांक्षा जहाँ पर समाप्त होती है वही से संन्यास प्रारंभ होता है । इसलिए समस्त सांसारिक कार्यों और भोगों से विरक्त होकर ही संयम धारण किया जाता है। तथा शास्त्रों के अनुसार ही उसका यावज्जीवन पालन किया जाता है । अपनी इच्छानुसार धर्म और शास्त्रों में परिवर्तन करनेवाला साधु नहीं, असाधु होता है । **सन्त तो वह ही है जो शास्त्रों के अनुसार आचरण करे और उपदेश दे।**

परन्तु खेद है कि विलासप्रिय सामान्य जनों की संगति में आने से वर्तमान साधुजन भी संगति के कुप्रभाव से सुरक्षित नहीं रह पाये। गृहस्थों से मेल-जोल बढ़ानेवाले साधुओं के आचार-विचारों में अद्भुत विपरीतता का अविर्भाव हो गया है। त्यक्तसंसारी कहे जानेवाले साधुओं के मन में संयम के प्रति अनुराग एवं दृढ़ता दिखना अब दुर्लभ हो गया है। दूसरी ओर कई लोग, जो यह चाहते हैं कि साधुओं के माध्यम से हमें यश, ख्याति, पूजा, लाभ आदि मिल जाय, वे साधुओं का दुरुपयोग कर रहे हैं । ऐसे ही स्वार्थ से मूढ़ चन्द लोगों ने साधुओं को भी परिग्रही तथा लौकिक कार्यों में अनुरक्त बनाकर अपने स्वार्थ के लिये समाज के सामने प्रस्तुत किया। नॅपकीन, मोबाईल, कम्प्युटर, मोटर आदि सहित सग्रन्थ रूप में तथा दिन-रात हँसी करते हुए साधुवेषधारियों को नित्य देखते-देखते अज्ञानी लोग उन्हें ही अपना आराध्य समझने की बहुत बड़ी भूल कर बैठे हैं। ठीक ही है ! **अज्ञानी और चारित्रहीन को अज्ञानी ही गुरु मानते हैं।** परन्तु उन्हें इस बात पर गौर करना चाहिए कि -

बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से घिरे हुए कुगुरुओं को नमस्कार आदि करना गुरुमूढ़ता है । (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा (टीका)-३२६, पृष्ठ २३१)

इसलिए **वह व्यक्ति मूढ़ है जो (निर्ग्रन्थ अर्थात् अपरिग्रही)**

संतों को छोड़कर भोगियों को गुरु मानता है और उन्हें गुरु, सद्गुरु, परम गुरु कहकर संबोधित करता है । (अमृत कलश (२) - पृष्ठ १)

अनगार धर्मामृत में कहा भी है -

सर्वाभिलाषिण: सर्वभोजिन: सपरिग्रहा: ।
अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु ।।

अर्थात् - जो सब प्रकारकी वस्तुओंके अभिलाषी हैं, सब कुछ खाते हैं- जिनके भक्ष्य अभक्ष्यका विचार नहीं है, **परिग्रह रखते हैं,** ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते तथा **मिथ्या उपदेश करते हैं वे गुरु नहीं हो सकते।** (पृष्ठ ९८-९९)

जो मुनि दिन-रात लोगों के साथ उनके घर-व्यापार तथा दुनियादारी की बाते करके अथवा आनन्दयात्रा आदि आयोजनों के द्वारा जनमनरंजन नहीं करते हैं, अपितु निरन्तर स्वाध्याय-ध्यान वा तप में लीन रहते हैं, नॅपकीन, मोबाईल, लॅप-टॉप, मोटर आदि तो दूर, अपने पास फोटो तक नहीं रखते हैं, ऐसे किसी अपरिग्रही मुनि को देखकर अब लोगों की प्रतिक्रिया ऐसी होती है मानो सभ्य मनुष्यों की सभा में अचानक कोई बन्दर आ गया हो । **पद्मपुराण** में कहा है -

जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् ।
संजुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्विता जना: ।।९२/६२।।

अर्थात् - तीव्र मिथ्यात्वसे युक्त मनुष्य व्रतरूप गुणोंसे सहित एवं दिगंबर मुद्राके धारक (अपरिग्रही) मुनियोंको देखकर ग्लानि करेंगे । (भाग ३ - पृष्ठ १८०) सो ही आज हो रहा है ।

स्वार्थी व्यक्ति निज स्वार्थ के पीछे साधु पुरुष को भी असाधु समझते हैं किन्तु ऐसे अज्ञानी लोग यह विचार नहीं करते कि **तत्त्वार्थसूत्र** में सत्यव्रत की पाँच भावनाओं में एक भावना हास्य का त्याग करना कही है। यथा-

क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य प्रत्याख्यानान्यनुवीचि भाषणं च पञ्च ।७/४।

क्योंकि **जो साधु हँसीमजाक आदि रूप बहुत बोलता है वह इन**

कार्योंके निमित्तसे वाहन जातिके देवोंमें जन्म लेता है । (मूलाचार पूर्वार्ध - पृष्ठ ६९)

मूलाचार में भी मुनियों को हास्यकथा, राजकथा, राष्ट्रकथा, अर्थकथा आदि विकथा नहीं करने का ही आदेश लिखा हुआ है। क्योंकि **जिनदीक्षा लोगों का मनोरंजन करने अथवा परकल्याण के लिए नहीं अपितु केवल आत्महित करने के लिए ही ग्रहण की जाती है।**

सद्गुरु

गणधराचार्य कुन्थुसागर उपदेश देते हैं - बिना गुरु तुम्हारा कल्याण कभी नहीं होगा, लेकिन गुरु भी हो तो उसका लक्षण **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** में बताया है -

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रह ।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ।।१०।।

जो विषयों की आशा से रहित हो और जो साधु के योग्य जो कार्य स्वयं का ज्ञान, ध्यान और तप में लीन हो । ये तीन लक्षण जिसके अन्दर पाये जाये उसी का नाम सद्गुरु है । (स्याद्वाद केसरी - पृष्ठ १५१-१५२) और सद्गुरु कहलाने वाला स्वयं विकृत है, स्वयं भिखारी है, स्वयं अशांत है, स्वयं क्रोधी, मानी, मायी, लोभी है तो उसके आश्रय में आने वाले भव्य जीवों को वो सही मार्ग नहीं बता सकता । (पृष्ठ १५३)

सभी प्रकार के परिग्रह के त्यागी श्री आदिसागरजी महाराज के पास पिच्छी-कमण्डलु के अलावा कुछ भी नहीं था । (विश्व का सूर्य - पृष्ठ ९४) ऐसी शास्त्रोक्त चर्या का पालन करनेवाले ऐसे मुनियों को देखने की लोगों को उत्कट इच्छा रहती थी, क्योंकि वैराग्य रस से सराबोर मुनि ही सच्चे सुख का मार्ग दिखा सकते हैं। कवि भूधरदास उन निर्ग्रन्थ-अपरिग्रही मुनियों के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हुए कहते थे -

वे गुरु मेरे उर बसों, जो भव जलधि जिहाज ।
आप तीरे और तारहिं, ऐसे श्री ऋषिराज ।।

परन्तु वर्तमान परिस्थिति में कोई भी विवेकी मनुष्य यही कहेगा -

ऐसे गुरु मेरे मन न बसों, जो भव जलधि में उपल जिहाज ।

आप डूबें, सभीको डुबावें, ऐसे मूढ़ सग्रन्थ ऋषिराज ॥
मोह को महा शत्रु जानकर, छोड़ा था सब संग-घर-बार ।
परिग्रह रखते हुवे वो ही, अब काहे भूले वह विचार ॥

उनकी इस दुरवस्था का यथार्थ चित्रण करते हुए श्रुतपंचमी पूजा की जयमाला में आ. गुप्तिनन्दि कहते हैं -

कुछ वस्त्र छोड़ निर्ग्रन्थ बने, निर्ग्रन्थ स्वरूप न पहिचाना ।
इससे आगे न निकल सके, समता सुख क्या है ना जाना ॥
(श्री रत्नत्रय आराधना - पृष्ठ १६९)

अत्यावश्यक वस्त्रादि को छोड़कर शेष मोबाईल, कम्प्युटर, मोटर आदि परिग्रहों का त्याग तो नौवीं परिग्रहत्याग प्रतिमा में ही हो जाता है।

वसुनन्दि श्रावकाचार में कहा भी है -

मोत्तूण वत्थमेत्तं परिग्गहं जो विवज्जए सेसं ।
तत्थ वि मुच्छं ण करेइ जाणइ सो सावओ णवमो ॥२९॥

अर्थ - जो वस्त्रमात्र परिग्रह को रखकर शेष सब परिग्रह को छोड़ देता है और स्वीकृत वस्त्रमात्र परिग्रह में भी मूर्च्छा नहीं करता है, उसे परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी नौवां श्रावक जानना चाहिए । (पृष्ठ २७४-२७५)

इससे स्पष्ट होता है कि मुनि-आर्यिका तो दूर, क्षुल्लक के लिए भी नॅपकीन, मोबाईल, मोटर, लॅप-टॉप, नौकर-चाकर, सुवर्ण और रत्नों की मालाएँ, नेलकटर आदि परिग्रह रखना निषिद्ध है। फिर भी शास्त्राज्ञा को अनदेखा करके परिग्रह रखनेवाले साधुवेशधारी सग्रन्थों को **मूलाचार प्रदीप** में आचार्य सकलकीर्ति कठोर शब्दों में फटकारते हैं -

पूर्वं त्यक्त्वाखिलान् संगान्, कटिसूत्रादिकान् ततः।
इष्टवस्तूनि गृह्णाति, यः सोऽहो किं न लज्जते॥२५५॥

अर्थात् - जो मुनि पहले तो करधनी आदि समस्त परिग्रहोंका त्याग कर देता है; और फिर वह (नॅपकीन, मोबाईल, टीवी, कम्प्युटर, गाड़ी, तेल, नेलकटर आदि) इष्ट पदार्थोंको ग्रहण करता है। अहो! आश्चर्य है कि वह फिर भी लज्जित नहीं होता है। (पृष्ठ ३८)

परिग्रह को धारण करने वाला जिनेन्द्र के मार्ग में पूर्णतया लगा हुआ निर्ग्रंथ नहीं माना जाता है । परिग्रह को धारण करते हुए पूर्ण रत्नत्रय का पालन नहीं बनता है । (स्याद्वाद केसरी - पृष्ठ ४९) अर्थात् परिग्रहसहित अणुव्रत तो हो सकते हैं किन्तु परिग्रह रखते हुए महाव्रत नहीं हो सकते ।

यह शास्त्रोक्त कथन मुनि-आर्यिका-ऐलक-क्षुल्लक-क्षुल्लिका इन सभी त्यागियों के लिए सम्पूर्णतः नियामक है। क्योंकि परिग्रह विकल्पों को उत्पन्न करते हैं, जिससे ध्यान नहीं हो पाता है। फलतः कर्मों की निर्जरा नहीं हो सकती। अपितु परिग्रह के कारण उनको अशुभ कर्मों का निरन्तर आस्रव अवश्य होता रहता है।

संसार का बढ़ना अरे ! नर देह की यह हार है ।
नहीं एक क्षण तुझको अरे ! इसका विवेक विचार है॥
(अमूल्य तत्त्व विचार-४)

विकल्प

विशेष उल्लेखनीय बात है कि तालाब, बाग तथा पर्वत आदि को देखने के लिये तथा लौकिक आनन्दके निमित्त निश्चयसे मुनि कभी विहार नहीं करते हैं । (सम्यक् चारित्र चिन्तामणि-४/५-६, पृष्ठ ४५-४६)

जब आ. शान्तिसागर महाराज आगरामें थे तब उन्होंने कलापूर्ण आगराके २२ जिनमंदिरोंका ध्यानसे दर्शन किया, किन्तु जगद्विख्यात ताजमहल देखनेकी इच्छा भी न की। शाहजहाँके किलेको देखनेकी तनिक भी आकांक्षा न की। (चारित्र चक्रवर्ती - पृष्ठ २५१)

इसके पीछे यह कारण है कि मुनिदीक्षा का उद्देश्य आत्मतत्त्व को जानना है, दुनिया के पदार्थों को जानने का प्रयत्न करना उनके लिए घातक है । यहाँ यह बात जानने योग्य है कि आ. शान्तिसागर महाराज का राजनीति से तनिक भी सम्बन्ध नहीं था। **समाचारपत्रों में जो राष्ट्रकथा आदि का विवरण छपा करता है, उसे वे न पढ़ते थे, न सुनते थे।** उन्होंने जगत् की ओर पीठ कर दी थी। परन्तु सांसारिक विकल्पों के जंजाल से मुक्त होने के लिए गृहत्याग करनेवाले साधु जब समाचारपत्र पढ़ते हुए अथवा मोबाईल लेकर दुनियाभर की बाते करते हुए दिखते हैं तब समझ

में नहीं आता हैं कि इन्होंने गृहत्याग करके कौनसे विकल्प छोड़े हैं ? उनकी दिनचर्या देखकर कही से ऐसा नहीं लगता है कि उन्हें वैराग्य अथवा त्याग शब्द का अर्थ भी समझता हो।

त्यागी की शोभा

यह बात सुस्पष्ट है कि किसी भी **त्यागी की शोभा त्याग में है, आडम्बर, वैभव और भोगों में नहीं!** यह तथ्य भूलकर सुखशीलता के कारण समाचारपत्र, टीवी, मोबाईल, कम्प्युटर, मोटर, तेल, नॅपकीन आदि संयमघाती वस्तुओं के प्रयोग में सुख खोजनेवाले इन सुविधाप्रधानियों को **स्वयम्भू स्तोत्र** के इस श्लोक का गंभीरता से चिन्तन करना चाहिये –

स्वास्थ्यं यदाऽऽत्यन्तिकमेष पुंसां, स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा ।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्ति–रितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वः।।३१।।

कवि भूधरदास **वैराग्य भावना** में इसका भावार्थ कहते हैं –

भोग बुरे भव रोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके ।
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ।
वज्र अगनि विषसे, विषधरसे, ये अधिके दुखदाई ।
धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गति–पंथ सहाई।।११।।

जैन व्रताचरण तो भोगोंसे निवृत्तिके लिये हैं, भोगोंमें प्रवृत्तिके लिये नहीं । जो मनमें राग होते हुए भी किसी लौकिक इच्छासे त्यागी बन जाता है वह व्रती नहीं है । (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका)–३२९, पृष्ठ–२३६) फिर जिसकी लौकिक इच्छाएँ जीवित है वह मुनि कैसे कहलाया जा सकता हैं?

ऐसे लोग साधु संस्था में आकर भी अपनी चित्तवृत्ति और इन्द्रियां वश में न होने के कारण अनेक प्रकार की उच्छृंखल प्रवृत्ति करने लग जाते हैं । अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये नाना प्रकार के साधन जुटाकर साधु आश्रम को गृहस्थ आश्रम से भी अधिक रंगीला बनाना चाहते हैं । जो कार्य एक अच्छे से गृहस्थ के लिए भी अनुचित माने गये हैं उन्हें भी करने से बाज नहीं आते और वे **उनके ऐब (दोष) लोगों की दृष्टि में खटकने न लग जाये इसलिए अनेक प्रकार के बनावटी जादू–टोना, यन्त्र, मन्त्र, गण्डा, ताबीज बना देकर जनता को अपना भक्त बनाये रखने की**

कोशिश करते हैं । इन ऐसे लोगों को पाखण्डी समझना चाहिये और इन पाखण्डियों का साथ देना, इन्हें भले बताना वगैरह सब पाखण्डी मूढ़ता है अर्थात् बुरी बात है । क्योंकि **ऐसे लोगों का समर्थन करने से मार्ग दूषित हो जाता है** और इन्हें प्रोत्साहन मिलता है तो ये और भी घमण्ड में आकर निरर्गल प्रवृत्ति करने लग जा सकते हैं । (मानव धर्म – पृष्ठ ३८)

अतिशय दुर्लभ संयम पाकर उसे बिगाड़ने के समान बड़ा अनर्थ दूसरा नहीं है। इसलिए गणिनी आर्यिका ज्ञानमती का कहना रहता है कि ''दुर्लभता से मानव पर्याय मिलने के बाद न जाने कितने जन्मों के पुण्य के फलस्वरूप जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की जाती है । यदि इस अवस्था में भी पाप से न डरा गया तो अनमोल रत्न को गहरे समुद्र मे फेकने जैसी स्थिति होगी ।'' (गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती अभिवन्दन ग्रन्थ – पृष्ठ ४८)

नमोस्तु शासन के शत्रु

भावसंग्रह में कहा है –

णिग्गंथं पव्वयणं जिणवरणाहेण अक्खियं परमं ।
तं छंडिऊण अण्णं पवत्तमाणेण मिच्छत्तं ।।१५२।।

अर्थ : जिनेन्द्रदेवने परिग्रह रहित होने का ही उपदेश दिया है । ऐसे उत्कृष्ट उपदेश की अवहेलना करके स्वेच्छा–प्रवृत्ति करना मिथ्यात्व है ।

इसलिए गणधराचार्य कुन्थुसागर समझाते हैं – बड़े से बड़ा व्रत भी तुमने धारण कर लिया, लोक दिखावे के रूप में और फिर नाना प्रकार के दोष लगा रहे हैं, अतिचार लगा रहे हैं और पंचम काल को दोष दे रहे हैं। अरे पंचम काल–पंचम काल में क्या है ? कुछ बदला हैं क्या? **बताओ, पंचम काल में क्या बदला हैं ?** पानी गरम हो गया क्या ? अग्नि ठंडी हो गई क्या ? सूर्योदय पश्चिम में हो रहा है क्या ? सूर्यास्त पूर्व में हो रहा है क्या ? नहीं, कुछ भी नहीं बदला । **तो आचार्य कहते हैं – अरे पागलो ! काल को दोष मत लगाओ, थोड़ा सा अपने व्रतों को निरतिचारपूर्वक पालन करने की कोशिश करो ।** (स्याद्वाद केसरी – पृष्ठ २५५)

अतः दुर्गति से बचने के लिये मुनि–आर्यिका–ऐलक–क्षुल्लक–

क्षुल्लिका पदधारी सभी त्यागियों को शास्त्रों में कहे अनुसार सभी परिग्रह का सम्पूर्ण त्याग करना अनिवार्य है। अन्यथा उनको सच्चे साधु ही नहीं कहा जा सकता।

फिर भी परिग्रह के पंक में फंसते हुए त्यागियों को देखकर खीजते हुए आ. देवनन्दि कहते हैं – परिग्रह ही बुराइयों की जड़ है । भ. महावीर स्वामी ने त्याग की बात कही किन्तु हम परिग्रह जोड़कर चलते हैं । (प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ ४९)

विचार कीजिए – धर्म को भौतिकवाद से उतना अधिक खतरा नहीं है, जितना धर्म का लिबास पहने हुए अधर्म से और मुनिपद का चोला मात्र ओढ़े हुए सुखशील और धनलोलुपी पीछीधारियों से है। **यह कटु सत्य है कि अर्थ की आँखे परमार्थ को देख नहीं सकती, अर्थ की लिप्सा ने बड़ों–बड़ों को निर्लज्ज बनाया है** । (मूक माटी – पृष्ठ १९२)

जिसको मुनि त्यागे तुच्छ जान, वे उसे मानते हैं महान ।
उसमें ही निशदिन रहें लीन, वे धन–संचय में ही प्रवीण ।।

परन्तु हे मुनिराज ! अपने मन में धन की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए । यदि आपके मन में धन की आकांक्षा उत्पन्न हो जाये तो फिर गार्हस्थ्य और मुनिपद में अन्तर ही क्या रहा ? (सज्जनचित्तवल्लभ – पृष्ठ १२) जब तक धन की आकांक्षा है, धन की महिमा गायी जा रही है; तब तक धर्म की बात प्रारंभ नहीं हुई है । (समग्र खण्ड ४ (प्रवचन पर्व) – पृष्ठ ३०७)

इसी लिए आ. विशुद्धसागर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं – जिन–दीक्षा का उद्देश्य ही निश्चय–धर्म की सिद्धि करना होता है । वे अज्ञ जीव हैं जो जिन–दीक्षा की महिमा जाने बिना जिनदीक्षा धारण कर अन्य रागी–द्वेषी जीवों जैसी प्रवृत्ति कर रहे हैं । **तीर्थेश के वेष में भिखारी जैसी प्रवृत्ति करना मुनिमुद्राधारी को शोभा नहीं देता** । (समाधितंत्र अनुशीलन – पृष्ठ २७९) **वीतराग भाव के स्थान पर जो वित्त में राग कर रहे हैं वे नमोस्तु शासन के शत्रु हैं** । (पृष्ठ १४५)

उनके लिए आ. कुशाग्रनन्दी **चौबीस वन्दनमाला** में कहते हैं –

मान–प्रतिष्ठा हो गयीं, इससे अपना काम ।
धर्मद्रोह का भय नहीं, प्रिय लगता है दाम ।।९/४।।
(बुद्धि साम्राज्य – पृष्ठ ५०६)

ऐसे धनेच्छुक साधुवेषधारियों को राष्ट्रसन्त तरुणसागर के इशारे पर ध्यान देना चाहिये कि लक्ष्मी भरोसा करने के काबिल नहीं है। वह तो चंचला है । आज यहाँ और कल वहाँ । जिस–जिसने भी इस पर भरोसा किया आखिर में वह रोया है । (कड़वे प्रवचन भाग–१, पृष्ठ १४)

इससे आगे बढ़ते हुए आ. पुष्पदन्तसागर कहते हैं – धन–संपत्ति एक कचरा है । कचरा भरकर जीने में भी सार नहीं है । (अमृत कलश – पृष्ठ ८८) **अगर परमात्मा का आनन्द लेना है तो धन बटोरने की तृष्णा को छोड़ो** । अपरिग्रह के भाव को जगाओ और मनकी वासना को शून्य करो । (चल हंसा उस पार – पृष्ठ ११०–१११)

विभाजन की ओर

इस बात को नजरअंदाज नहीं करना चाहिये कि परिग्रह–ग्रहण और उसका समर्थन करने की प्रवृत्ति के कारण ही मूलसंघ से श्वेताम्बरों की उत्पत्ति होकर जैन धर्म दो टुकड़ों में बट गया था। **आज हम पुनः एक नये विभाजन की ओर जा रहे हैं– निर्ग्रन्थ मुनि और सग्रन्थ मुनिवेषधारी अर्थात् परिग्रही साधु।** परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि **वह गृहस्थ कौड़ी का नहीं, जिसके पास कौड़ी भी न हो और वह साधु भी कौड़ी का भी नहीं जिसके पास कौड़ी भी हो ।**

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज कहते थे – **''ऐसे साधुको पैसा (आदि) देनेवाला पहले दुर्गतिमें जाता है।''** ठीक ही है ! **धर्मविरुद्ध कार्य का फल दुर्गति ही है।** इसलिए–लोकमत के पीछे मत दौड़ो, नहीं तो भेड़ों की तरह जीवन का अन्त हो जायेगा । (समग्र खण्ड ४ (प्रवचनामृत) – पृष्ठ ५१)

जिम्मेदार कौन ?

प्रश्न – वर्तमान साधुओं के पास जो परिग्रह और ऐशो–आराम के साधन दिख रहे हैं, उसका जिम्मेदार कौन है ?

समाधान – आ. देवनन्दि ने कचनेर वर्षायोग (सन १९९५) में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया था –

परिग्रह बढ़ा दिया श्रावकों ने । बढ़ाने वाले ये ही, साधुओं को बिगाड़ने वाले ये ही, साधुओं को मिटाने वाले ये ही, साधुओं को अकर्तव्य मार्ग की ओर इंगित करने वाले ये ही, साधुओं का पतन कराने वाले ये ही, कोई दूसरे नहीं हैं ।

ये ले लो, वो ले लो । अरे, जो साधु के लिए चाहिए है – एक टाइम भिक्षा, उस टाइम तो घर में रहते हो; उस समय तो कोई यहां नहीं आयेगी और साधु को जो नहीं चाहिए है – वो परिग्रह देने के लिए दिन रात साधु के पीछे आयेंगे । महाराज ! ये लो, पर मारो थोड़ो सो भी भविष्य बता दो । **साधुओं को बिगाड़ने का काम आप (गृहस्थ) करते हो।** (दशधर्मामृत – पृष्ठ ६१–६२)

इससे स्पष्ट होता है कि अतिशय दुर्लभ जिनदीक्षा प्राप्त करने के बाद भी **जो साधु रेड़ीओ, टेप, टीव्ही, समाचारपत्र, मोबाईल, कम्प्युटर, मोटर, गरम भोजन इनमें उलझ गये हैं वे जितने दोषी हैं उनसे भी अधिक दोष भक्तों का रूप लेकर उन्हें उनके संयम का घात करनेवाली ऐसी कुत्सित वस्तुएँ देनेवाले हितशत्रु गृहस्थों का है।**

प्रश्न

भ. महावीरने कहा है कि पंचम कालमें अन्ततक धर्म रहेगा । मैं इस बातपर कदापि अविश्वास नहीं करता । परन्तु मैं सोचता हूँ कि आज जैनोंकी जो अवनति हो रही है, क्या ऐसेही जर्जर मृतवत् स्थितिमें दिगम्बर धर्म जिन्दा रहेगा ? क्या विश्वधर्मप्रचारक हमारे आचार्य इसकी अवमानना देखतेही रहेंगे ? क्या होगा इस जैन धर्मका ? (सुप्त शेरों ! अब तो जागो – पृष्ठ २८)

यदि यह चारित्रहीनता और निर्ग्रन्थ मुद्रा के संरक्षण के प्रति हम ऐसे ही उदासीन रहेंगे तो फिर मुनि निर्ग्रन्थ अर्थात् अपरिग्रही होते हैं यह बात केवल शास्त्रों में ही रह जायेगी । **जिन शासन और निर्ग्रन्थ मुनिमुद्रा की विडम्बना को क्या यों ही सब देखते–सुनते रहेंगे ? अपरिग्रहता**

और मुनिचर्या का सरे–आम होम किया जा रहा है और तुम मौन बैठे हो तो क्या आप धर्मात्मा हो ?

उपाय

जिसने व्यक्ति को ही धर्म मान लिया है, वह अभी धर्म से बहुत दूर है । जिस जीव ने धर्म को समझा है, वह व्यक्ति के पीछे धर्म का बलिदान नहीं करता । अपितु धर्म का पक्ष ग्रहण करता है । क्योंकि उपगूहन यह नहीं कहता कि शिथिलाचार का पोषण करो; उपगूहन कहता है कि धर्म की रक्षा करो । **श्रावकवर्ग एकत्रित होकर साधुओं को आगमविरुद्ध वस्तुएँ नहीं देने का निश्चय करे तथा जिनके पास ऐसी वस्तुएँ हो उन्हें उन वस्तुओं का त्याग करने के लिए बाध्य करे** तो जो उच्छृंखल साधु शास्त्राज्ञा के विपरीत चलने से भयभीत नहीं होकर निर्भयता से अपनी इच्छानुसार संयमघातक वस्तुओं का अधिकाधिक प्रयोग करने में ही अपनी श्रेष्ठता मानते हैं । उन्हें असहाय होकर शास्त्रविरुद्ध क्रियाएँ छोड़नी ही पड़ेगी । क्योंकि उनका सारा ठाट–बाट गृहस्थों के बल पर ही चलता है ।

इसलिए जिस गृहस्थवर्ग ने निर्दोष मुनिमार्ग को लालच में फँसाकर सुखशीलता का कुमार्ग दिखाकर अधिकतर साधुओं का अध:पतन कराया है, यह अब उसी गृहस्थवर्ग की नैतिक जिम्मेदारी भी है कि वह ''अपना लोटा छानो'' अथवा ''जो जैसा करेगा वैसा भरेगा; हमे उससे क्या ?'' ऐसी उदासीनता छोड़े और मुनियों का पुनरुत्थान करके आगमनिष्ठ एवं अपरिग्रही मुनियों को समाज में पुन: प्रतिष्ठित करें। **मोक्षमार्ग के प्रति होने वाले अपलापों को सुन (और देख) कर कौन ऐसा सम्यग्दृष्टि है जो (उनका विरोध किये बिना) निर्विकल्प बैठा रहेगा ?** (आर्यिका, आर्यिका है – पृष्ठ ५०)

स्थितिकरण

उपगूहन की चर्चा तो सब करते हैं । परन्तु उस समय यह भूल जाते हैं कि सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में एक स्थितिकरण अंग भी है, जिसका अर्थ रत्नत्रय से डिगते हुवे जीव को पुन: रत्नत्रय में स्थिर करना है।

उपगूहन तो आप लोगों ने कर लिया लेकिन स्थितिकरण नहीं किया तो आपने पाप कर लिया; क्योंकि उपगूहन तो शिथिलाचार का किया गया। पर आपने उपगूहन के साथ स्थितिकरण नहीं किया तो आपने शिथिलाचार का पोषण ही किया । (पुरुषार्थ देशना – पृष्ठ १००)

सम्यक्त्व और व्रत आदि से भ्रष्ट होते हुए मनुष्य को फिर से उसी में स्थिर कर देना ही स्थितिकरण अंग है । (तीर्थंकर बनने का मन्त्र – पृष्ठ ६) अर्थात् **सम्यग्दृष्टि मनुष्य चारित्र से च्युत हो रहे मुनियों को समझाकर उन्हें पुन: चारित्र में स्थिर करने का यथासंभव प्रयत्न करता है।**

धार्मिक विश्वास या धर्माचरण से कोई शिथिल होता हो तो होने देना, उसे धर्म मे दृढ़ न करना अस्थितिकरण (नाम का दोष) है । (तीर्थंकर बनने का मन्त्र – पृष्ठ ९) अथवा स्थितिकरण रूप परिणाम का अभाव ही अस्थितिकरण है । यह सम्यग्दर्शन का दोष है । अर्थात् रत्नत्रय से च्युत हो रहे जीव को पुन: रत्नत्रय में स्थिर करने का प्रयत्न नहीं करने से सम्यग्दर्शन को मलिन करनेवाला **अस्थितिकरण** दोष उत्पन्न होता है।

गृहस्थ भी समझा सकते हैं

धर्मप्रेमी गृहस्थों का यह कर्तव्य है कि वे साधुवेष धारण करके भी परिग्रह रखनेवाले इन सुखलोलुप साधुओं को समझावें कि साधुपद धारण करके उनको अब सुई के नोंक के बराबर भी परिग्रह नहीं रखना चाहिये। क्योंकि नौवीं प्रतिमा से लेकर आगे मुनिपदपर्यन्त परिग्रह के लिये कोई स्थान नहीं है।

भगवती आराधना (टीका) में कहा है – **जो मुनि मार्गसे भ्रष्ट हो जाते हैं, विवेकी जन उन्हें सन्मार्ग दिखलाते हैं ।** (पृष्ठ ८१४)

इसलिए हम सामान्य गृहस्थ होकर भी मुनियों को कैसे समझायें ऐसा भी नहीं सोचना चाहिये क्योंकि **सागार धर्मामृत** में श्रावकों के कर्तव्यों में मुनियों के रत्नत्रय का उत्थान करने का प्रयत्न भी सम्मिलित किया गया है । यथा–

जिनधर्मं जगद्बन्धुमनुबद्धुमपत्यवत् ।
यतीञ्जनयितुं यस्येत्तथोत्कर्षयितुं गुणैः ।।२/७१।।

अर्थात् – सभी प्राणियोंके लिये उपकारक ऐसे जिनधर्मकी परंपरा चलानेके लिये मुनियोंको उत्पन्न करने तथा विद्यमान मुनियोंको गुणोंसे समृद्ध– उत्कृष्ट करनेके लिये विवेकी श्रावकको उसी प्रकार प्रयत्नशील होना चाहिये, जिस प्रकार वह अपनी संतान को गुणी बनानेका प्रयत्न करता है।

श्रेयो यत्नवतोऽस्त्येव कलिदोषाद् गुणद्युतौ ।
असिद्धावपि तत्सिद्धौ स्वपरानुग्रहो महान् ।।२/७२।।

अर्थात् – पंचमकालके अथवा पापकर्मके दोषसे मुनियों के गुणोंमें विशेषता लानेके प्रयत्नके सार्थक नहीं होनेपर भी जो प्रयत्न करता है, उसका कल्याण अवश्य होता है। और यदि उसमें सफलता मिलती है तो उस प्रयत्नके करनेवाले मनुष्यका तथा साधर्मीजनों और जनसाधारणका महान् लाभ होता है । (पृष्ठ १११)

अन्यथा, **प्राय: बहुमत का परिणाम यही तो होता है कि, पात्र ही अपात्र की कोटि में आता है।** (मूक माटी – पृष्ठ ३८२)समय रहते ही उसे रोकने का प्रयत्न नहीं किया गया तो जैन साधु और जैनेतर महंतों में केवल वस्त्र का ही भेद रह जायेगा और भगवान महावीर का पवित्र निर्ग्रन्थ मार्ग हमारी आँखों के सामने दूषित होकर नष्टप्राय होता हुआ नजर आयेगा।

इसलिए आ. सुविधिसागर समाज को जगाने के लिए कहते हैं – **यदि हमारे समाजके कर्णधार समय रहते हुए नहीं चेते तो ऐसा न हो जाय कि जैन धर्म कलंकित रूपसे जीनेको मजबूर हो जाए । ...**

कही ऐसी स्थिति न आवे इस हेतुसे कोई सशक्त कदम उठाया जाना आज निहायत जरूरी है । (सुप्त शेरों ! अब तो जागो – पृष्ठ १७७)

अपने अन्तिम वर्षायोग (सन १९९९) की स्थापना के अवसर पर आ. आर्यनन्दि ने भी समाज को सावधान किया था–''समाजानं संघटित राहून अनाचाराचा कसून विरोध करावा. अन्यथा साधू आणि श्रावक दोघांचंही चारित्र्य धोक्यात येईल.'' (हाचि साधु ओळखावा ! आचार्यश्री आर्यनंदी – पृष्ठ ६४)

अर्थात् – **समाज संघटित रूप से अनाचार का विरोध करे। अन्यथा साधु और श्रावक दोनों का भी चारित्र खतरे में होगा ।**

सत्यासत्य का निर्णय

निर्ग्रन्थता अर्थात् दिगम्बरत्व ही एक ऐसा बाँध है कि जिसको परवादी लांघ नहीं सकते । ज्यों ही यह बांध टूटेगा त्यों ही जैन धर्म का निर्मल स्वरूप नष्ट हो जाएगा । इसलिए–दिगंबरत्व की महिमा दिगंबरत्व की पूजा से ही बचाई जा सकती है, लौकिक हानि–लाभ का खाता देखकर, आस्थाविहीन और मूढ़ता–ग्रसित जनों के साथ समझौते करके नहीं । (सोनगढ़ समीक्षा – पृष्ठ १९७) इसलिए जैसा कि **शिवपथ** में कहा है –

देव शास्त्र गुरुणां हि परीक्षा प्रथमा क्रिया ।। ५३ ।।

देवशास्त्रं गुरो: परीक्षणं च प्रथमं कर्तव्यं वा अस्ति ।

देव–शास्त्र–गुरु की परीक्षा करना प्रथम कर्तव्य है । (पृष्ठ ८९–९०)

पाँच महाव्रत आदि २८ मूलगणों का जैन साधु हमेशा पालन करते हैं । इनमें से एक भी क्रिया कम होने पर उसे साधु नहीं माना जाता है । (संत साधना – पृष्ठ १५) यही कारण है कि आ. चंद्रसागर कहते हैं – **जो आरंभ–परिग्रह सहित हैं, वे मिथ्या गुरु कहलाते हैं।** (सहस्राष्टक चर्चा – पृष्ठ १२२)

अत: आ. विमदसागर कहते हैं – **सग्रन्थ (परिग्रही) को गुरु मानना... यह सब तो मिथ्यात्व है ।**(जिज्ञासा के समाधान–पृष्ठ १३६)

आगम और परम गुरुओं की परम्परा से प्राप्त इस उपदेश को केवल तर्कों के बल से विघटित नहीं किया जा सकता । फिर भी **पंचम काल, हीन संहनन और परिस्थिति के झूठे बहाने की आड़ लेकर आगमविरुद्ध क्रियाओं तथा परिग्रह का समर्थन करने के लिए जो तरह–तरह के कुतर्क करते हैं, उनके वे वचन तभी तक रम्य लगते हैं, जब तक कि उन पर विचार न किया जाये, विचार प्रारम्भ करते ही वे मूर्खों के अपलाप लगने लगते हैं।** ऐसे लोगों के लिये इतना ही कहना चाहिये कि नीम न होय मीठी, जो खाओ घी अरु गुड़ से ।

इसलिए आ. सुविधिसागर कहते हैं – जब कोई व्यक्ति मुझसे कहता है कि महाराज, दुनिया बदल गई तो मुझे बहुत हँसी आती है । अरे,

दुनिया बदल गई, कैसे ? क्या बैल दूध देने लगे ? क्या पुरुष सन्तान पैदा करने लगे ? क्या सूरज रातमें और चन्द्रमा दिनमें चमकने लगा ? क्या बदला ? बदली है तो मानवकी बुद्धि तथा दृष्टि । (सुप्त शेरों ! अब तो जागो – पृष्ठ २६–२७)

आ. पुष्पदन्तसागर ने भी कहा हैं – नाच न जाने आँगन टेढ़ा । नाचना सीखो, आँगन टेढ़ा मत कहो । **त्याग करना सीखो, काल को दोष मत दो।** टेढ़े आँगन में भी नाच हो सकता है। जो नाचना जानता है वो टेढ़े आँगन में भी नाच सकता है। **जो परमात्मा भाव से भरा है वह पंचम काल में भी (सच्चा) मुनि बन सकता है। (तथा शास्त्रों के अनुसार मुनिचर्या का पालन कर सकता है।)** (अमृत कलश – पृष्ठ १५९)

सारांश – **जिसमें सम्यग्दर्शनसहित निर्ग्रन्थ रूप है, वही निर्ग्रन्थ है ।** (तत्त्वार्थवार्तिक–९/४६/११, पृष्ठ ७९८)

और ऐसे **निर्ग्रन्थ के सिवाय अन्य कोई गुरु नहीं है।**

(शान्तिनाथ पुराण–८/२७, पृष्ठ १०९)

इसलिए ध्यान रखना, **जो निर्ग्रन्थ (अपरिग्रही) नहीं है, वे हमारे गुरु नहीं हैं ।** (पुरुषार्थ देशना – पृष्ठ १६६) **बिना कुछ विचार किये निर्ग्रन्थ और सग्रन्थ – सबको नमस्कार करना यह विनय नहीं, वैनयिक मिथ्यात्व है ।** (ति. प. ३/२०१–२०३) ?

तिलोय पण्णती (खण्ड १) में कहा है – ज्ञान और चारित्र के विषय में जिसने अभी शंका को दूर नहीं किया है, जो क्लिष्ट भाव से युक्त है, वे मिथ्यात्व भाव से युक्त होकर भवनवासी देवों की आयु बाँधते हैं । (३/११८ – पृष्ठ १३६) परन्तु आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि लोग शास्त्र का अध्ययन नहीं करते हैं जिससे कौन साधु या आचार्य प्रामाणिक हैं, वे आगम के अनुसार उपदेश देते हैं या नहीं इसका उनको ज्ञान नहीं हो पाता है । वे भोलेपन से मात्र नग्न मुद्रा और पीछी–कमण्डलु देखकर उनके मोबाईल, लैपटॉप, मोटर, नौकर आदि परिग्रह की ओर दुर्लक्ष करके उनको गुरु मान लेते हैं और इस बात को भूल जाते हैं कि–

जिनमत के मुनिगण सब परिग्रह तज दिगंबर को धरते हैं ।
बस पिच्छी और कमंडल लेकर भवसागर से तिरते हैं ।।
(बुद्धि साम्राज्य – पृष्ठ ३६८)

अतः **सम्यक्त्व की प्राप्ति और सुरक्षा के लिए हमें शास्त्रों का अध्ययन करके सत्य क्या है और असत्य क्या है? इसको जानकर सत्य का आश्रय लेना चाहिए और सत्य का ही समर्थन करना चाहिए ।** अन्यथा यदि हम अज्ञानता से परिग्रही साधुओं को भी गुरु मानते रहे तो सम्यक्त्व के अभाव से हमारा संसार और दुःख बढ़ता ही रहेगा, उनका कभी अन्त ही नहीं होगा। इसलिए यह दुर्लभ मनुष्य जन्म व्यर्थ नहीं गँवाकर हमें सत्य मार्ग जानना चाहिए ।

ज्ञान–महर्षि प्रश्नोत्तरी में यही चर्चा निम्न प्रकार से की गई है–

प्रश्न १७३ : कैसे मुनि पूज्य गिने जाते हैं ?

उत्तर : जो राग–द्वेष–मोहादि अंतरंग परिग्रह से रहित हैं, बाह्य परिग्रह के त्यागी हैं और सुदृढ़ चारित्र पालन करने वाले हैं ऐसे गुरु ही वंद्य और पूज्य हैं । (पृष्ठ ४५)

प्रश्न ३०६ : भेषी गुरुओं के लिये जो ऊपर इतना कहा है, उस सबका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर : तात्पर्य यही है कि **जो किसी बहाने से परिग्रह धारण करते हैं वे गुरु कभी वंद्य (वंदना के योग्य) नहीं हो सकते ।** (पृष्ठ ७२)

प्रश्न ४४० : जो मुनि भेषी परिग्रह सहित हैं वे कैसे हैं ?

उत्तर : जो मुनि होकर भी परिग्रह रखने की आकांक्षा रखते हैं वे निंद्य कुत्तों के समान हैं । (पृष्ठ १०१)

आ. कुशाग्रनन्दि की यह न्यायपूर्ण वाणी सबको सुहावनी नहीं लगेगी । क्योंकि जिस जीव का पुण्य क्षीण हो चुका है, उसकी विचारशक्ति भी क्षीण हो जाती है । परन्तु सत्यासत्य का निर्णय प्रभावकता या अप्रभावकता से नहीं, आचरण के माध्यम से होता है । इसलिए – **जैनमार्ग में मात्र भेष (नग्नता और पिच्छी–कमंडलू) नहीं पूजा**

जाता, भेष के अनुसार गुण हो तो ही वह गुरु पूज्य है, अन्यथा नहीं । (श्रावकधर्मप्रदीप – पृष्ठ ४९)

क्षुल्लिका अजितमती की दीक्षा के अवसर पर आ. शान्तिसागर महाराज ने उनको जो उपदेश दिया था वह सबके लिए मार्गदर्शक है । महाराज ने कहा था – चारित्र उज्ज्वल ठेवून तीन दिवस जरी जगलात तरी ते श्रेष्ठ आहे. पण चारित्रभ्रष्ट होऊन शंभर वर्षे जगलात तरी काय उपयोग? ते हीन आहे. (अजितमती साधना स्मृतिगंध – पृष्ठ ८६) अर्थात् – चारित्र को उज्ज्वल रखकर तीन दिन जिना भी श्रेष्ठ है, किंतु चारित्रभ्रष्ट होकर सौ वर्ष भी जिये तो उसका मूल्य क्या है ? कुछ भी नहीं ।

कुगुरु–सेवा का परिणाम

जो मात्र नग्न शरीर लिये हैं, परन्तु पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्रपालन से शून्य हैं, (क्षेत्र) मठादि के निर्माण में अपनी पर्याय को नष्ट कर रहे हैं, ... द्रव्यसंयम के गुणों से भी शून्य हैं, वे श्रमणाभास हैं– श्रमण नहीं हैं । (स्वरूप–सम्बोधन परिशीलन – पृष्ठ १२३)

अष्टपाहुड में कहा है –

जे वि च पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभयेण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ।।दर्शनपाहुड १३।।

अर्थात् – जो (उनको परिग्रही) जानते हुए भी लज्जा, गौरव, और भयसे उन मिथ्यादृष्टियों के चरणोंमें पड़ते हैं – उन्हें नमोऽस्तु आदि करते हैं, वे भी पापकी अनुमोदना करते हैं। अतः उनको रत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं होती।

आ. वीरसागर स्मृति ग्रन्थ में उद्धृत एक श्लोक में कहा है–

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ।
त्रीणि तत्र प्रवर्धन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ।। (पृष्ठ ४१)

अर्थात् –**(परिग्रही, असंयमी आदि) अपूज्य साधुवेषी जहाँ पूजे जाते हैं और (निर्ग्रन्थ अर्थात् अपरिग्रही रहनेवाले तथा शास्त्रोक्त आचरण करनेवाले) पूज्य (मुनियों) का अनादर होता है, वहाँ पर दुर्भिक्ष,**

मरण और रोग आदि का भय इन तीन की वृद्धि होती है।

उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला में कहा है –

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देई मरणाइं ।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरु सेवणं भद्दं ।।३७।।

अर्थात् – **सर्प तो एक बार मरण देता है और कुगुरु अनन्त बार मरण देता है, अनन्त संसार में डुबोता है** । इसलिए **सर्प का ग्रहण करना भी एक बार ठीक है परन्तु कुगुरु की सेवा करना कदापि अच्छा नहीं है ।**

मौनं अर्धसंमतिः

सर्वार्थसिद्धि में कहा है –

सग्रन्थ (परिग्रही) को निर्ग्रन्थ मानना विपर्यय मिथ्यात्व है ।

(८/१/७३१ – पृष्ठ २९२)

इस प्रकार जिनेंद्र भगवान के उपदेश के अनुसार आगम की बात कहते हैं तो चुभ जाती है । परन्तु **वैयक्तिक मान्यता, परम्परा और परिस्थिति इन सब से आगम की आज्ञा बड़ी है, सर्वोपरि है** । क्योंकि आगम तो स्वयं सर्वज्ञदेव के मुखकमल से निर्गत होने से सर्वोपरि प्रमाण है । (प्रवचन निर्देशिका – पृष्ठ १७) और शास्त्रविहित आचरण न करने से आगम का त्याग होता है । (भगवती आराधना (टीका)–३१०, पृष्ठ २८१)

प्राकृत भावसंग्रह में कहा है –

आयमचाए चत्तो परमप्पा होई तेण पुरिसेण ।
परमप्पयचाएण य मिच्छत्तं पोसियं होई ।।६०८।।

जिसने आगम ग्रन्थों को नहीं माना, वह जिन परमात्मा का त्याग करने वाला, सर्वज्ञ वाणी को नहीं मानने वाला होता है । जिसने अर्हन्त सर्वज्ञ परमात्मा कथित आगम को नहीं माना वह मिथ्यात्वी होता है । (पृष्ठ १९४)

आगम केवलज्ञानपूर्वक उत्पन्न हुआ है, अतः आगम में अनुमान का प्रयोग नहीं हो सकता । (प्रवचन निर्देशिका – पृष्ठ १७७) इस तथ्य की ओर दुर्लक्ष करके आज स्वार्थी लोगों के द्वारा पंचम काल, परिस्थिति और

अपवाद मार्ग का मोहक किन्तु वंचनापूर्ण नाम देकर परिग्रह रखने को आगमानुसारी और उचित ठहराने को जोर–शोर से प्रयास किया जा रहा है । ऐसे में चुप बैठे रहना पाप होगा । **और गलत को गलत कहने में कोई बाधा नहीं और कहना भी चाहिए । इसमें जो व्यक्ति मौन रहता है, उसका भी अपराध माना जायेगा ।** (श्रुताराधना (२००८) – पृष्ठ ६१) क्योंकि – जो किये जाने वाले कार्य का निषेध नहीं करता है तो वह उसका अनुमोदक माना जाता है । (तत्त्वार्थवार्तिक–६/८/९ – पृष्ठ ७११)

खंडन की आवश्यकता क्यों ?

शंका – हमेशा अपने मत का मंडन करना चाहिए, दूसरों के मत को मिथ्या कहने और उसके खंडन करने की क्या आवश्यकता है ?

समाधान – सर्वथा ऐसा एकांत नहीं है, चूँकि **दूसरों के मिथ्यामत के स्वरूप को समझे बिना और शिष्यों को समझाये बिना उनका त्याग करना असंभव है** तथा यह पाखंडमतों का निराकरण तो द्वादशांग के अंतर्गत है । (प्रवचन निर्देशिका – पृष्ठ ११५) परन्तु दुर्भाग्य है कि आज हम गलत को गलत कहने की हिम्मत खो बैठे हैं । और यही कारण है कि देश, समाज (और संतों) में बेशुमार बुराइयाँ हैं । (क्रांतिकारी सूत्र – पृष्ठ ६१)

आगमप्रेमियों का कर्तव्य

यदि आप किसी जीव की पतित होने से रक्षा करने का प्रयत्न करते हो तो आप उसके हितैषी हो । उसका स्थितिकरण नहीं कर सकते हो तो कम से कम माध्यस्थ भाव धारण करके उसकी भक्ति करना छोड़कर उदासीन हो जाओ । किन्तु किसी के शिथिलाचार में आप सहयोगी बने तो यह निश्चित समझना कि आप उसके शत्रु से कम नहीं हो ।

आचार विचार में प्रमाद ही समाज के पतन का कारण बनता है। अतः **आगमप्रेमियों का कर्तव्य है कि वे रंचमात्र भी भय न करके सन्मार्ग का प्रतिपादन करें। जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा से डरना चाहिए, लोगों से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?**

आगमानुसारी आचरण का फल

प्रश्न – महाराज! आप तो महान् साधु हैं। आपके समक्ष रहने से सभी साधुओंका निर्वाह होता रहा है, आपके पश्चात् साधुओं का कैसे निर्वाह होगा?

उत्तर – जैसा आगम में कहा गया है, उसके अनुसार जो भी साधु चलेगा, उसकी रक्षा धर्म के द्वारा होगी। धर्माराधक की विपत्ति धर्म के प्रभाववश नियम से दूर होती है । (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ३७२)

२. विडम्बना और चेतावनी

साधु कौन ?

ज्ञानांकुशम् के २४ वें श्लोक में आगत प्रपञ्चरहितो गुरुः इस पद की व्याख्या आ. सुविधिसागर ने **रत्नमाला** के २८ वें श्लोक का आधार लेकर निम्न प्रकारसे की है –

दिगम्बरो निरारंभो नित्यानन्दपदार्थिनः ।
धर्मदिक् कर्मधिक् साधुर्गुरुरित्युच्यते बुधैः ।।२८।।

दिगम्बर साधु आडंबरों से विहीन, पाखंड से हीन, कषायों से उपरत, ज्ञान तथा ध्यान में तत्पर एवं आत्मतत्त्व की भावना में रत रहते हैं । इसलिए वे प्रपंच से रहित हैं । (ज्ञानांकुशम् – पृष्ठ ६९) इस यथार्थ कथन से विपरीत **कितने ही शक्तिहीन बकवादी मनुष्य (नॅपकीन, मोबाईल, कम्प्युटर आदि) नाना उपकरणों को साधन समझ इनके ग्रहण में दोष नहीं है, ऐसा कहकर उन्हें ग्रहण करते हैं सो वे कुलिंगी हैं।** मूर्ख मनुष्य व्यर्थ ही उन्हें आगे करते हैं। **वास्तव में ऋषि (मुनि) वे ही हैं जिनकी परिग्रह में और उस की याचना में बुद्धि नहीं है।** (पद्मपुराण भाग ३–११९/५९–६१, पृष्ठ ३९६)

सन १९२५ की बात है। उस समय पूज्यश्री (चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज) नसलापुर में विराजमान थे। मुनि नेमिसागरजी उस समय गृहस्थ थे। उनके हृदय में सत्य, श्रद्धा और सद्गुरु के प्रति निर्मल भक्ति का भाव नहीं उत्पन्न हुआ था।

श्री नेमण्णा ने महाराज से पूछा था – **"साधु किसको कहते हैं ?"**

महाराज ने कहा था – **"जिनके पास परिग्रह न हो, कषाय न हो, दुनिया की झंझटे न हो, जो स्वाध्याय – ध्यान में लीन रहता हो, उसे साधु कहते हैं।"** (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ३७१)

विडम्बना

ऊँचे व्रतों को स्वीकार करके नीची वृत्ति को करना साधु पुरुषों को शोभा नहीं देता । गृह–भवन, प्रासाद, महानगरों का त्याग करके नगर–नगर में स्वनाम के भवन बनवाने के लिए सेठों–मन्त्रियों के द्वारों पर अयाचक वृत्तिधारियों को जिनेन्द्रदेव के ध्वज पिच्छी को लेकर याचना करना पड़े यह तो विडम्बना है । **जो त्यागी अर्थ के पीछे जिनमुद्रा को धूमिल कर रहे हैं, वे जिन शासन के शत्रु हैं।** बहुत अच्छा होता कि कुछ दिन गृहस्थावस्था में रहकर (स्कूल–कॉलेज निर्माण, क्षेत्रविकास आदि) लौकिक कार्य सम्पन्न कर लेते, फिर निष्कल वीतरागमुद्रा धारण करते, जिससे मुनिमुद्रा में भीख नहीं माँगनी पड़ती । अहो त्यागिओ ! त्याग में कष्ट दृष्टिगोचर हो रहा हो तो क्यों नहीं गृहस्थ हो जाते ? जिससे मायाचारी तो नहीं करनी पड़ेगी तथा मुनिचर्या भी कलंकित नहीं होगी, आपको निगोद की यात्रा नहीं करनी पड़ेगी, ऐसा जिनोपदेश है। (समाधितंत्र अनुशीलन – पृष्ठ १३५)

इसलिए आ. अभिनन्दनसागर कहते हैं – निर्धनता (मुनिपद) धारण करने से पहिले पूर्ण विचार करना, कारण दोष लगाने की अपेक्षा अल्पारंभ (श्रावक) होना अच्छा है । (सुनना सबकी ! करना आगम की !! – पृष्ठ १७)

मुनि पुलकसागर कहते हैं – **जैन मुनि अपने पास सोना, चांदी, रुपया, पैसा, आश्रम, मठ, मन्दिर, भूमि, अनाज, वाहन, नौकर या पशु नहीं रखते हैं ।** (संत साधना – पृष्ठ ८)

किन्तु यह **कड़वा सच** है कि आज देश के संत महात्मा अकूत

संपत्ति के मालिक बने बैठे हैं । **उनके बड़े-बड़े आश्रम (और क्षेत्र), महंगी कारे (नौकरों की फौजे) और भव्य जीवन शैली को देखकर लगता ही नहीं कि ये भारत के विरक्त संत हैं ।** आज वे ''साधना'' में कम, ''साधनों'' में ज्यादा जी रहे हैं । (कड़वे प्रवचन भाग १ - पृष्ठ १०९)

दुख की बात

बड़े दुख की बात है कि देव भी जिस मुनिचर्या की प्रशंसा करते हैं तथा जिसका यथोक्त पद्धति से उत्कृष्ट पालन करने की भावना करते रहते हैं; उस त्रिलोकपूज्य मुनिपद का बाह्यवेष मात्र लेकर महापाप से भी नहीं डरने वाले कुछ स्वार्थी लोगों ने मुनिपद की गरिमा और मर्यादा नष्ट कर दी है ।

धन, सुविधाएँ और लोकप्रियता पाने के लिए वे नकली मुनि यन्त्र, अंगुठियाँ, मालाएँ, रत्न, कलश आदि बेचना, गृहस्थों को तिलक करना, रक्षासूत्र बाँधना, फोटो बाँटना, लोगों के घर जाना, ग्रहशान्ति-कालसर्प योग निवारण आदि शास्त्रविरुद्ध मनगढ़ंत, निराधार और पापोत्पार्जक क्रियाएँ करके अज्ञानी लोगों को ठग रहे हैं । इतना ही नहीं, वे दीन होकर धनवान् गृहस्थों और नेताओं की स्तुति भी करने लगे हैं ।

लोग भी इस बात को भूल रहे हैं कि अत्यन्त प्रसिद्ध, आकर्षक और चतुर परन्तु धन का आशावान् वक्ता यथार्थ उपदेश नहीं दे सकता । इसलिए जो जिनआज्ञा मानने में सावधान है उसे स्वपरहितघातक तथा धान्य छोड़कर भूसी कूटने जैसा अकार्य करनेवाले परिग्रही और धनेच्छुक कुगुरुओं का त्याग करना चाहिये । क्योंकि - **ऐसा कुगुरु स्वयं कुगति का पात्र बनता है व निजाश्रित (अपनी भक्ति करने वाले) अनेकों को कुगति में पटक देता है ।** (ए बे-लगाम के घोडे ! सावधान - पृष्ठ १०५)

सिंह के समान स्वाभिमानी और अयाचक वृत्ति का मूर्तिमन्त प्रतीक ऐसे निर्ग्रन्थ दिगंबर मुनिपद को लांछित करनेवाले ऐसे लोभी मुनिवेषधारियों के प्रति **उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला** में कहा है -

गुरुणा भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं ।

दोण्णवि अमुणियसारा दुसमि समयम्मि बुड्डंति।। ३१ ।।

अर्थात् - ऐसे जो गुरु हैं वे तो भाट हुए; भाटों के समान शब्दों से दातार की स्तुति करके दान आदि ग्रहण करते हैं । सो इस दु:षमकाल में पात्र और दाता दोनों ही संसार में डूबते हैं ।

कहा भी है - लोभी गुरु लालची चेला, होय नरक में ठेलं-ठेला ।

सावयधम्मदोहा में कहा भी है - सम्यग्दर्शन से रहित कुपात्र को यदि दान दिया जाता है, तो उससे कुभोग प्राप्त होते हैं । धनवानों के घर के घोड़े, हाथी, कुत्ते और वेश्याओं को जो भोग प्राप्त होते हैं, वे सब कुपात्रदान रूपी वृक्ष के नाना प्रकार के फल जानने चाहिये । (८१-८२)

कुपात्रदान का फल

साधुओं को दिया हुआ दान निश्चय से महाकल्याणकारी है, परन्तु साधु के उत्तम गुणों से रहित विषय कषायों में लीन पात्र में दिया गया दान, भक्ति ऐसे (श्रेष्ठ) फल को नहीं देते क्योंकि आरम्भ-परिग्रह सहित साधु पत्थर की नौका के समान होते हैं - स्वयं भी डूबते हैं और दूसरों को भी डुबोते हैं । सो ही **भावसंग्रह** में कहा है -

लोहमए कुतरंडे लग्गो पुरिसो हु तीरिणीवाहे ।
बुड्डइ जह तह बुड्ढ कुपत्तसम्माणओ पुरिसो ।।५४९।।

अर्थ : जिस प्रकार लोहे की नाव का आश्रय लेने वाला पुरुष नदी के प्रवाह में डूब जाता है, उसी प्रकार कुपात्र का आदर करने वाला - कुपात्र को दान देने वाला पुरुष संसारसमुद्र में डूब जाता है ।

जिस प्रकार नीमके वृक्षमें पड़ा हुआ पानी कडुआ हो जाता है, कोदो में दिया हुआ पानी मदकारक हो जाता है और सर्पके मुखमें पड़ा हुआ दूध विष हो जाता है, उसी प्रकार अपात्र के लिए दिया हुआ दान विपरीत फलको करनेवाला हो जाता है । (हरिवंशपुराण-७/११८ - पृष्ठ १४१)

इसलिए **प्रबोधसार** में कहा है -

बुद्धिपौरुषसाध्यासु दैवायत्तासु भूतिषु ।
साधवो नैव सेवन्ते मिथ्यात्वमुदितं नृपम् ।।३/२०५।।

संसार में धन ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति बुद्धि से अथवा पौरुष से होती

है अथवा भाग्य से होती है । इसलिए सम्यग्दृष्टि सज्जन पुरुष मिथ्यात्व से **प्रसन्न** होने वाले (देव, गुरु,) राजा की सेवा कभी नहीं करते हैं । (पृष्ठ २०१)

अतः हमारे सच्चे अतिथि 'आरम्भ व पंचसूनारहित' मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका ही हो सकते हैं । (रत्नकरण्ड श्रावकाचार (प्रश्नोत्तरी टीका)-११४, पृष्ठ १८३) भाव एवं चारित्र से हीन साधु (तो पात्र नहीं) अपात्र हैं । (अंकाख्यान श्रेयांस कोश-भाग ३ - पृष्ठ १०) अपात्रों को दान देने से द्रव्य का केवल दुरुपयोग होता है, उससे फल कुछ भी नहीं होता । (धर्मसंग्रह श्रावकाचार-४/११८) अर्थात् - जिसने अपात्र को दान दिया, उसने अपना धन खोया । (सावयधम्मदोहा-८४) अतः उनको दान देने में धर्म नहीं है; वे तो केवल करुणा के पात्र हैं ।

दातार को चेतावनी

धन के लालची साधुओं का वर्णन करते हुए महाराज ने कहा था-

''ऐसे भी साधु बहुत होते थे, जो पैसा रखते थे। कमण्डलु में पैसे डलवाते थे। **ऐसे साधु को पैसा देनेवाला पहले दुर्गति को जाता है। तुम पैसा देकर के पहले स्वयं क्यों दुर्गति को जाते हो?''**

इससे आचार्यश्री की स्फटिक सदृश विशुद्ध दृष्टि स्पष्ट होती है। **कोई गृहस्थ साधु के हितशत्रु किन्तु भक्तरूपधारी बनकर उनको रागादिवर्धक सामग्री देते हैं। इस धर्मविरुद्ध कार्य से ऐसे दातार कुगति में जाते हैं।** (चारित्र चक्रवर्ती - पृष्ठ ३७१)

इसलिए **दिगम्बर मुनि के हाथ में यदि रखा जाता है तो एकमात्र ग्रास ही होता है, और कोई द्रव्य दिगम्बर मुनि के हाथ में नहीं रखा जाता । जिसने ग्रास के अलावा अन्य वस्तु रखी है, वह मुनि-हत्या का दोषी है ।** (इष्टोपदेश-सर्वोदयी देशना - पृष्ठ २)

आदाय व्रतमात्मतत्त्वममलं ज्ञात्वाथ गत्वा तपः
सन्तोषो धनमुन्नतं प्रियतमा क्षान्तिस्तपो भोजनम् ।
क्षुत्तृष्णाभयसङ्गमोहजनितां हित्वा विकल्पावलिं
यत्नाद्येन पुरा स देव सुविधि-र्दोषात् सदा पातु नः ।।

३. परिग्रह

क्या है आचेलक्य ?

भगवती आराधना में कहा है - आचेलक्यमें केवल वस्त्रका ही त्याग नहीं कहा किन्तु सर्व परिग्रहका त्याग कहा है।

ण य होदि संजदो वत्थमित्तचागेण सेससंगेहिं ।
तम्हा आचेलक्कं चाओ सव्वेसि होइ संगाणं ।।१११८।।

केवल वस्त्रमात्रका त्याग करनेसे और शेष (नौकर, गाड़ी, टॉर्च, टीवी, रेडिओ, मोबाईल, नॅपकीन, फोटो, यंत्र, रसोई बनाने के लिए कोयले, विशिष्ट धातु के बर्तन, चक्की, तेल आदि) परिग्रह रखनेसे साधु नहीं होता। यदि आचेलक्य (नग्नता) से वस्त्रमात्रका त्याग ही कहा होता तो वस्त्रके सिवाय अन्य परिग्रहको ग्रहण करनेवाला भी साधु हो सकता था। (परन्तु ऐसा नहीं है।) अतः आचेलक्यका अर्थ सर्व परिग्रहका त्याग मानना चाहिए। ... तथा महाव्रतका कथन करनेवाले सूत्र इस बातके ज्ञापक हैं कि आचेलक्यमें सर्व परिग्रहका त्याग कहा है।

और भी कहा हैं कि यदि साधुके लिए केवल वस्त्रमात्र ही त्याज्य है, अन्य परिग्रह त्याज्य नहीं है तो अहिंसादिव्रत नहीं हो सकते-किन्तु परिग्रहका त्याग करनेपर अहिंसादि व्रत स्थिर रहते हैं। तथा परिग्रह स्वीकार करनेपर इन्द्रिय सुखकी अभिलाषा अवश्य होती है । (पृष्ठ ५७४-५७५)

इसीलिए आचार्य अकलंकदेवने **तत्त्वार्थवार्तिक** में कहा है - तन्मूला सर्वदोषानुषङ्गाः ।७/१७/६। अर्थात्-परिग्रह सब दोषों का मूल है।

आ. सुविधिसागर कहते हैं - परिग्रह परद्रव्य के प्रति ममत्वभाव को जागृत करता है । परिग्रह दुर्गति का कारण है। (सज्जनचित्तवल्लभ - पृष्ठ १०) अतः आत्मकल्याण करने के इच्छुक साधक को परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग कर देना चाहिये । (पृष्ठ १३)

आ. पुष्पदंतसागरकृत प्रवचनांश संग्रह **अमृत कलश** में कहा है - **जहाँ तृणमात्र भी परिग्रह नहीं बस वही अकिंचन व्रत है।** (पृष्ठ २८) क्योंकि **परिग्रह के साथ भय और चिन्ता आती है ।** (पृष्ठ ११४)

इसलिए **मुनि में परिग्रह का पूर्ण अभाव होता है।** (पृष्ठ १६०)

भगवती आराधना में परिग्रह का वर्णन इस प्रकार किया है –

बाहिरसंगा खेत्तं वत्थुं धणधण्णकुप्पभंडाणि ।
दुपय चउप्पय जाणाणि चेव सयणासणे य तहा ।।१११३।।

अर्थात् – खेती आदिका स्थान– **क्षेत्र, मकान** (आश्रम, क्षेत्र, मन्दिर), सुवर्ण (यंत्र, माला, रत्न, फोटो) आदि **धन,** जौ आदि **धान्य, कुप्य** अर्थात् वस्त्र, **भाण्ड** शब्दसे हींग, मिर्च आदि, **दुपद** शब्दसे दास, दासी, सेवक आदि, हाथी–घोड़े आदि **चौपाये**, पालकी, विमान (गाड़ी) आदि **यान** तथा **शयन, आसन** (पाटा, सिंहासन) आदि ये दस बाह्य परिग्रह हैं।

बाह्य परिग्रहोंका त्याग किये बिना ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, वीर्य और अव्याबाधत्व नामक आत्मगुणोंको ढाँकनेवाले अभ्यन्तर कर्ममलको दूर नहीं किया जा सकता, यह दृष्टान्त द्वारा कहते हैं –

जह कुंडओ ण सक्को सोधेदुं तंदुलस्स सतुसस्स ।
तह जीवस्स ण सक्का मोहमलं संगसत्तस्स ।।१११४।।

अर्थात् – जैसे तुष सहित चावलका तुष दूर किये बिना उसके अन्तर्मलका शोधन करना शक्य नहीं है वैसे ही जो बाह्य परिग्रहरूपी मलसे सम्बद्ध है उसका अभ्यन्तर कर्ममल शोधन करना शक्य नहीं है। (पृष्ठ ५७०–५७१)

अष्टपाहुड में कहा है – दिगंबर साधुदीक्षा घोड़ा, हाथी (मोटर–गाड़ी) आदि वाहनों के परिकर से रहित होती है। (पृष्ठ २१८) **जिनदीक्षा में रंचमात्र भी लक्ष्मी का स्वीकार करना निषिद्ध है।** (पृष्ठ २१९)

जो (रत्न, मालाएँ, यंत्र आदि) वस्तुओं को खरीदने और बेचने में आसक्त है...(फोटो, मालाएँ, यंत्र, मोटर,..) स्वर्णादि परिग्रह साथ रखता है ऐसे आत्महीन दीक्षित मनुष्य को क्या मुक्ति की प्राप्ति होगी? (नहीं होगी।) (पद्मपुराण–१०५/२३२, भाग ३ – पृष्ठ २९५)

पीछी–संयमोपकरण, कमण्डलु–शौचोपकरण और शास्त्र–ज्ञानोपकरण; इन तीन उपकरणों को श्रमण ग्रहण कर सकता है । इसके अलावा यदि (नॅपकीन, मोबाईल आदि) किसी वस्तु को ग्रहण करता है तो यह आगम के विरुद्ध है । (श्रुताराधना – पृष्ठ ७७)

ताकि भक्तों का दिल न टूटे

प्रश्न – साधु की परिग्रह रखने की इच्छा नहीं होने पर भी भक्तों ने लाई हुई मालाएँ, नॅपकीन आदि नहीं लेने से उन भक्तों का दिल टूट जायेगा इसलिए यदि साधु अनिच्छा से वह वस्तु रख ले तो भी क्या वह दोषी है ?

समाधान – मूलाचार प्रदीप में कहा है –

अदत्तमथवा दत्तं, यत्संयमादि हानिकृत् ।
तत्सर्वथा न च ग्राह्यं, प्राणै: कंठगतैरपि ।।१७३।।

अर्थ – जो द्रव्य दिया हो या न दिया हो; यदि वह संयम की हानि करनेवाला है तो ऐसा (तेल, मोबाईल, नॅपकीन, नेलकटर, गाड़ी आदि) द्रव्य कंठगत प्राण होने पर भी मुनियों को कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये। (पृष्ठ २५)

वैराग्यसार (टीका) में भी कहा है – **निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण करके पश्चात् परिग्रह की संगति करते हो, तो तुमने इहलोक और परलोक दोनों का ही हरण किया है** । हे मूर्ख जीव ! तुमने अपना जन्म वृथा ही खोया है ।।५।। (पृष्ठ ३)

ऐसे मुनि के लिए **परमात्मप्रकाश** में कहा है –

जे जिणलिंगु धरेवि मुणि इट्ठ–परिग्गह लेंति ।
छद्दि हि करेविणु ते जि जिय सा पुणु छद्दि गिलंति ।।२/९१।।

अर्थात् – **जो मुनि जिनलिंग ग्रहण कर (दीक्षा लेकर) फिर भी इच्छित परिग्रहोंको ग्रहण करते हैं, हे जीव! वे ही वमन करके फिर उस वमनको पीछे निगलते हैं।** (पृष्ठ २१०)

मक्खी सिलिम्मि पडिओ, मुवइ जहा तह परिग्गहे पडिउ।
लोही मूढो खवणो, कायकिलेसेसु अण्णाणी ।। ८८ ।।

अर्थात् – जैसे मक्खी श्लेष्मा/कफ में गिरी हुई मृत्यु को प्राप्त होती है, वैसे ही **परिग्रहरूपी श्लेष्मा में पडा हुआ लोभी, मूर्ख, अज्ञानी साधु मात्र कायक्लेश में मरता है।** (रयणसार – पृष्ठ ६४)

ऐसे साधुको साधु बनने से तीन लाभ जरुर हो सकते हैं –

मुंड मुंडाए तीन गुण, सिर की मिट गई खाज ।

खाने को लड्डू मिलें, लोग कहे महाराज।। (पृष्ठ ५३)

बोधपाहुड की ५० वी गाथा में दीक्षा का वर्णन करते हुए 'णिण्णेहा' शब्द का प्रयोग किया गया है। अर्थात् **जिनदीक्षा निःस्नेह होती है – पुत्र, स्त्री, मित्र (परिवारजन, भक्त) आदि के स्नेह से रहित होती है।** (अष्टपाहुड – पृष्ठ २२१) इसलिए भक्तों का दिल रखने के लिए भी मुनि परिग्रह–स्वीकार आदि के द्वारा अपने व्रतों में दोष नहीं लगाते हैं।

आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) परम्परा के उन्नायक पट्टाधीश तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर महाराज के जीवन की एक बोधप्रद घटना है – जयपुर में एक महिला चाँदी की माला बनवाकर लायी और संघस्थ साधुओं को बांटने के लिए पूज्य आचार्य श्री को निवेदन किया, तो पूज्य आचार्य श्री ने उत्तर दिया, **''साधु को साधु जीवन में रहने दो, साधु अपरिग्रही है । उन्हें चाँदी की माला की क्या आवश्यकता है?''** (तपस्वी सम्राट – पृष्ठ २५) जिनशासन में क्षुल्लक को भी – जो चाँदी आदि अधिक मूल्य की धातुओं से बना हुआ हो ऐसा बहुमूल्य कमण्डलु अथवा पात्र कभी ग्रहण नहीं करने की आज्ञा है । (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार–२४/३४–४४) इसलिए– आचार्यश्री बोले, ''मुनियों को मुनि ही रहने दो, सोने–चाँदी की वस्तुएँ देकर मुनीम मत बनाओ । वे चाँदी की माला की रखवाली करेंगे या ध्यान–साधना ?'' (अनूठा तपस्वी – पृष्ठ १२३)

अष्टपाहुड में कहा है –

बालग्गकोडिमित्तं परिग्गहगहणं ण होइ साहूणं।... ।। सूत्रपाहुड–१७।।

अर्थात् – **निर्ग्रन्थ साधुओंके रोमके अग्रभाग की अनीके बराबर भी परिग्रह का ग्रहण नहीं करना चाहिए ।** (पृष्ठ १२०)

इसलिए प्रसिद्ध प्रवचनकार आ. पुष्पदन्तसागर कहते हैं – **''णमो लोए सव्वसाहूणं।''** अर्थात् लोक के सभी साधुओं को नमस्कार हो । कौन से साधु ?.... **चन्दा एकत्रित करनेवाले साधुओं को नमस्कार नहीं किया है। ऐसे साधु, साधु नहीं स्वादु हैं।** (अध्यात्म के सुमन – पृष्ठ ९०) क्योंकि **जब तक परिग्रह और परिचय के प्रति राग है,**

तब तक सत्संग और संन्यास बकवास है। (अमृत कलश – पृष्ठ २०७)

अतएव **आरम्भी–परिग्रही साधुओंको सद्गुरु नहीं कहा जा सकता, वे तो कुगुरु ही हैं।** (पृष्ठ ४६) **पंचमकालका अर्थ यह नहीं है कि मनमानी करें,** (रसीद बुक आदि) **बहीखाते साथ रखें, परिग्रह साथ रखें, पैसा एकत्रित करें।** (मुक्तिपथ की ओर – पृष्ठ ५६)

परिग्रह का फल – निगोद

मूलाचार प्रदीप में कहा है –

यतो न काकनी मात्रः संग्रहोऽस्ति महात्मनाम्।.... ।।७८।।

अर्थात्–**महात्मा मुनियोंके पास सलाई मात्र भी परिग्रह नहीं होता है।** (पृष्ठ २०५) क्योंकि **अष्टपाहुड** में कहा है –

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्थेसु ।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं।।सूत्रपाहुड–१८।।

अर्थात् – **नग्न मुद्राके धारक मुनि तिलतुष मात्र भी परिग्रह अपने हाथोंमें ग्रहण नहीं करते। यदि थोड़ा–बहुत ग्रहण करते हैं तो निगोद जाते हैं।** (पृष्ठ १२१)

मैं संग्रहीत परिग्रह के माध्यम से संघ का संचालन करूँगा और मन्दिर बनाऊँगा इस प्रकार का व्याज (बहाना) निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण कर नहीं करना चाहिये । **जो दिगंबर मुद्रा को प्राप्त कर परिग्रह को स्वीकृत करते हैं, उनका नरक और निगोद में पड़ना सुनिश्चित है ।** (सम्यक् चारित्र चिन्तामणि–३/९४–९५, पृष्ठ ४०–४१)

ममत्वभाव से ही परिग्रह

प्रश्न – तत्त्वार्थसूत्र में मूर्च्छा को परिग्रह कहा है। इसलिए कोई मुनि नॅपकीन, मोबाईल, गाड़ी आदि रखते हुए भी यदि उन में ममत्व भाव–अपनापन नहीं रखता हो तब भी क्या वह परिग्रही ही है ?

समाधान – यदि कोई साधुवेषधारी नॅपकीन, मोबाईल, मोटर आदि संयमघाती वस्तुओं का प्रयोग करता हुआ भी कहता है कि मुझे इन वस्तुओं में मूर्च्छा नहीं होने से यह परिग्रह नहीं है तो ऐसे स्व–पर वंचक ठग

के प्रति **भगवती आराधना** में कहा है –

अब्भंतरसोधीए गंथे णियमेण बाहिरे चयदि ।
अब्भंतरमइलो चेव बाहिरे गेह्लदि हु गंथे ।।१९०९।।

अर्थात् – अन्तरंगमें कषायकी मन्दता होनेपर नियमसे बाह्य परिग्रहका त्याग होता है। अभ्यन्तरमें मलिनता होनेपर ही जीव बाह्य परिग्रहको ग्रहण करता है। (पृष्ठ ८४६)

षट्खंडागम में जीवस्थान के सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वार के सूत्र ९३ की टीका में वीरसेन स्वामीने स्त्रियों के भावसंयम के विषय में कहा हैं– भावसंयमस्तासां सवाससामप्यविरुद्ध इति चेत्? न तासां भावसंयमोऽस्ति, भावासंयमाविनाभावि वस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः। शंका– वस्त्रसहित होते हुए भी उन द्रव्यस्त्रियों के संयम होने में कोई विरोध नहीं है? समाधान– उनका भावसंयम नहीं है, क्योंकि अन्यथा भावसंयम के मानने पर उनके भाव असंयम के अविनाभावी वस्त्रादिक का ग्रहण करना नहीं बन सकता है। (धवला पुस्तक १ – पृष्ठ ३३५)

तथा **प्रवचनसार** में स्पष्ट कहा है कि बाह्य परिग्रह से मूर्च्छा उत्पन्न होकर अन्तरंग संयम का घात होता ही है । (३/२१ – पृष्ठ २७१)

जो पदार्थ बुद्धिपूर्वक ग्रहण किया जाता है उसमें मूर्च्छा व़ा परिग्रह का अभाव कभी सिद्ध नहीं हो सकता । (संशयिवदनविदारण – पृष्ठ ९४)

इससे स्पष्ट होता है कि **परिग्रह मूर्च्छा का परिणाम है ।** (अमृत कलश – पृष्ठ ११४) इसलिए **बाह्य पदार्थ भी मूर्च्छा का कारण होने से परिग्रह ही है ।** ऐसी वस्तुएँ ग्रहण करने पर वह मुनि संयम से भ्रष्ट होकर असंयमी हो जाता है। इस प्रकारसे परिग्रह रखकर भी स्वयं को अपरिग्रह महाव्रती माननेवाले मुनि के लिए **ज्ञानार्णव** में कहा हैं –

सर्वसंगपरित्यागः कीर्त्यते श्रीजिनागमे ।
यस्तमेवान्यथा ब्रूते स हीनः स्वान्यघातकः ।।१६/२२।।

अर्थात् – **श्रीमज्जिनेन्द्र भगवान् के परमागम में समस्त परिग्रहों का त्याग ही महाव्रत कहा है, उसको जो कोई अन्यथा कहता है, वह नीच है तथा अपना और दूसरों का घातक है।** (पृष्ठ १३८)

इसलिए आ. गुणधरनंदी कहते है – नग्न दिगंबर साधु है किन्तु यदि मन में पदार्थों के साथ मोह ममता है तो वह परिग्रही है। उस साधु की अपेक्षा भरत जैसा गृहस्थ श्रेष्ठ है । (महक उठा जीवन –पृष्ठ ६३)

इससे स्पष्ट होता है कि जो बाहरी पदार्थों को ग्रहण करता है उसके अंतरंग में निश्चय से मूर्च्छा होती ही है, मुख से वह स्वीकार करे अथवा न करे। **पाप को पाप नहीं मानने वाला महापापी होता है।**

अपवाद मार्ग का अर्थ स्वच्छन्द वृत्ति नहीं है ।

प्रश्न – कई साधु मोबाईल, नॅपकीन आदि संयमघातक वस्तुएँ रखकर अपनी सुखशीलता को अपवाद मार्ग का नाम देते हैं । वे कहते हैं कि ''द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव के अनुसार साधु कुछ उपधि अर्थात् परिग्रह रख सकते हैं ऐसा अपवाद मार्ग का व्याख्यान शास्त्रों में है । इसलिए उन वस्तुओं से उनका मुनिपद नष्ट नहीं होता ।'' क्या उनका यह कथन सत्य है ?

समाधान – नहीं ! उनका यह प्रलाप आगम का अपलाप मात्र है। अपवाद मार्ग तो उसे कहा है – जिससे मूलगुणों का विच्छेद अथवा चारित्र का मूलतः विनाश न होने पावे । (योगसार प्राभृत–८/६५, पृष्ठ १८४)

प्रवचनसार में कहा है –

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ।।२२२।।

अर्थात् – द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव को जानकर जिस वस्तु के ग्रहण–विसर्जन में सेवन करनेवाले (साधु) के **संयम का छेद नहीं होता** ऐसी उपधि ग्रहण करके श्रमण सम्यक् आचरण करे ।

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं ।।२२३।।

अर्थात् – भलेही अल्प हो तथापि अनिन्दित हो, असंयत अर्थात् संसारी लोगों से अप्रार्थनीय हो और जो मोह उत्पन्न करनेवाली न हो, ऐसी ही (पीछी, कमण्डलु, शास्त्र रूप) वस्तुओं को हे श्रमण! तुम ग्रहण करो ।

इससे यथोक्त स्वरूपवाली उपधि ही उपादेय है, तथोक्त स्वरूप से

विपरीत मोबाईल, नॅपकीन, लॅपटॉप, मोटर आदि संसारी लोगों के उपयुक्त सामग्री साधुओं के लिए उपादेय नहीं है यह स्पष्ट हो जाता है । इसलिए –

बालो वा बुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलोणो वा ।
चरियं चरदु सजोग्गं मूलच्छेदो जधा ण हवदि ।।२३०।।

भावार्थ – बाल, वृद्ध, श्रान्त व ग्लान मुनि **मूलगुणों का जिससे छेद न हो** उस प्रकार से अपने पद के योग्य आचरण करते हुए शुद्धात्मभावना के साधनभूत प्रासुक आहार, जिनवाणी का ज्ञान व उपकरण आदि का ग्रहण करने रूप मृदु आचरण करना **यह अपवाद मार्ग का वास्तविक अर्थ है ।**

इसलिए नीतीसार समुच्चय में भी कहा भी है–

पञ्चचेलविनिमुक्त्त, ग्रन्थमुक्त्त मता सताम् ।
न ते सुवर्णस्त्र्यादिं, स्पृशन्ति गुरुसंयमा: ।।९५।।

टीका: वे निर्ग्रन्थ कभी भी रुपया, सोना, चांदी आदि का स्पर्श नहीं करते । इस श्लोक से गाथा ८६ में कथित 'सूरिर्द्रव्यमुपाहरेत्' इस पद का भी खुलासा हो जाता है कि वहाँ द्रव्य का अर्थ रुपया–पैसा, सोना–चांदी नहीं है अपितु कमण्डलु, पिच्छी, पुस्तक आदि संयम व ज्ञान के उपकरण से संबोधित पदार्थ है । (नीतिसार समुच्चय – पृष्ठ ८६)

उसी प्रकार ''वर्तमान में जितने मुनि हैं, वे सब 'पुलाक मुनि' हैं और पुलाक मुनियों के मूलगुणों की अपूर्णता शास्त्रों में स्वीकृत की गई है। इसलिए परिग्रह रखने पर भी उनके मुनित्व में कोई बाधा नहीं आती'' यह तर्क भी भ्रामक ही है । आगम में पुलाक मुनियों के मूलगुणों में अपूर्णता तो स्वीकार की गई है किन्तु वह इस प्रकार है –

''व्रतेष्वपि
क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवन्तोऽविशुद्धपुलाकसादृश्यात्
पुलाका इत्युच्यन्ते ।''

अर्थात् – जो (मुनि) कहीं पर और **कदाचित्** व्रतों में भी परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होते हैं, वे अविशुद्ध पुलाक के समान होनेसे 'पुलाक' कहे जाते हैं । (सर्वार्थसिद्धि–९/४६/९१०, पृष्ठ ३६३) तथा च –

''पराभियोगाद् बलादन्यतमं प्रतिसेवमान: पुलाको भवति ।''

अर्थात् – दूसरों के दबाववश जबरदस्तीसे पाँच मूलगुण और रात्रिभोजन–वर्जन व्रतमेंसे किसी एक की प्रतिसेवना करनेवाला मुनि 'पुलाक' होता है । (९/४७/९१४, पृष्ठ ३६४)

इससे स्पष्ट होता है कि जिनके मूलगुणों की विराधना कभी–कभार और वह भी परवश होकर होती है, स्वेच्छा से और सर्वदा नहीं ऐसे मुनि ही पुलाक कहलाते हैं; स्वेच्छा से परिग्रह ग्रहण करनेवाला तो स्वच्छन्द ही हैं । स्वेच्छा प्रवृत्ति का समर्थन करने के लिए आगम का विपरीत अर्थ करनेवाला तो चारित्र के साथ साथ सम्यग्दर्शन से भी हाथ धो बैठता है ।

मूलाचार के अनुसार –

जो जत्थ जहा लद्धं गेण्हदि आहारमुवधिमादीयं ।
समणगुणमुक्कजोगी संसार पवड्ढओ होइ ।।९३३।।

अर्थात् – जो जहाँ जैसा भी मिला वहाँ वैसा ही आहार, उपकरण आदि ग्रहण कर लेता है, वह मुनि के गुणों से रहित हुआ संसार को बढ़ाने वाला है । (उत्तरार्ध पृष्ठ १२९)

इसलिए अपवाद मार्ग का व्याख्यान उसे ही शोभा देता है जो सावद्य की इच्छा नहीं करता है । क्योंकि अपवाद का ग्रहण भी संसार के त्याग के लिए होता है ।

उपकरण

प्रश्न – साधु कैसी वस्तुएँ ग्रहण करते हैं ?

समाधान – भगवती आराधना (टीका) में कहा हैं –

जो वस्तु ज्ञान और संयम गुणोंका उपकार करती है उसे उपकरण कहते है। जिस उपकरणसे संयमकी साधना होती है वह उपकरण कमण्डलु और पीछी मात्र है। उनको छोड़कर अन्य वस्तुएँ संयमकी साधक नहीं होनेसे उपकरण नहीं है। यहाँ तक कि दूसरी पीछी, दूसरा कमण्डल भी उस समय संयमका साधक नहीं होनेसे उपकरण नहीं है। (पृष्ठ २१०) तब उनसे अन्य तेल, नॅपकीन, मोबाईल, नेल–कटर, कम्प्युटर, मोटर, एक से अधिक मालाएँ आदि वस्तुएँ स्पष्टत: उपकरण नहीं कही जा सकती।

अत: जो वस्तु ज्ञान और संयम में से एकका साधन है,

इसके बिना मुझे ज्ञान अथवा चारित्रकी सिद्धि नहीं होगी, उसी वस्तुको साधु ग्रहण करता है, अनुपयोगी वस्तुको ग्रहण नहीं करता है। (पृष्ठ ६११)

आ. महावीरकीर्ति शिष्यों को कहते थे – **पीछी, कमण्डलु और शास्त्र के सिवाय कुछ भी नहीं रखना होगा ।** (आचार्य श्री सन्मतिसागर अभिवन्दन ग्रन्थ – पृष्ठ २/५५)

इसलिए गणधराचार्य कुन्थुसागर कहते हैं – **ये (मुनि) वही उपकरण ग्रहण करते हैं जिससे चर्या–चारित्र का भंग नहीं होवे।** (रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूवार्ध) – पृष्ठ २१४) फिर भी यह आश्चर्य है कि किन्हीं जैन कहे जाने वालों में परिग्रह–परिकर रखते हुए भी अपने को संयत (मुनि) कहने में और कहलाने में संकोच नहीं किया जाता है । (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ८४)

ध्यान रखना– संत की साधना के लिए आचार्य श्रावक के द्वारा पिच्छी, कमंडलु और शास्त्र के दिलवाते हैं । लेकिन महत्त्वाकांक्षी श्रावक साधु से सदा–सदा के लिए जुड़े रहने के लिए (मोबाईल आदि) भौतिक संसाधनों की व्यवस्था करा देता है । (कुछ तो है – पृष्ठ २७०)

ऐसे भक्तरूपधारी शत्रु गृहस्थों से सावधान करते हुए आ. सुविधिसागर कहते हैं–परिग्रह मकड़ी के जाल की भाँति है । जो जीव उसमें एकबार भी उलझ जाता है, फिर वह अपने आपको मुक्त नहीं कर पाता । (ज्ञानांकुशम् – पृष्ठ ११६) परन्तु जो कोई संसार से विरक्त होना चाहता है, उसे समस्त परिग्रह से दूर रहना चाहिए । (कुछ तो है – पृष्ठ २००)

आ. देवनन्दि भी कहते हैं – **साधुओं को अयुक्त (अयोग्य) उपकरणों को नहीं लेना चाहिये । श्रावकों से वही दान स्वीकार करना चाहिये जिससे संयम की रक्षा होती हो ।** दान तो चार ही प्रकार के हैं – आहार, अभय, औषधि और शास्त्र अथवा उपकरणदान । साधु इनके अलावा जमीन, सुवर्ण आदि के दान को न स्वीकार करता है, न ऐसे दान की प्रेरणा देता है । (प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ ३२–३३) **जो परिग्रह आदि से सहित हैं, मन में राग–द्वेष रखते हैं, जो साथ में गाड़ी**

आदि आडंबर रखते हैं, वे वास्तव में साधु नहीं हैं । जो खेती, किसानी करते हैं वे साधु नहीं हैं । ऐसे साधुओं को मोक्षमार्ग में कोई भी स्थान नहीं है । (सागर प्रवाह – पृष्ठ १५४) **सच्चा गुरु परिग्रह से रहित है । जिसके पास तिल मात्र भी परिग्रह है ऐसा साधु मरकर निगोद–नरक की यात्रा करता है । गुरु वह होता है जो शास्त्र के अनुसार चलता है ।** (पृष्ठ १५५)

नॅपकीन रखने में दोष

प्रश्न – साधुओं के द्वारा नॅपकीन रखने में क्या दोष है ?

समाधान – मुनि प्रार्थनासागर **कदम–कदम पर मंजिल (भाग ४)** में कहते हैं – (जैन साधु) कपड़े की पिच्छी इसलिये नहीं रखते हैं क्योंकि सभी संतों का कपड़े का त्याग रहता है । और फिर वह (कपड़ा) गंदा हो जाता है । उसे धुलाना पड़ेगा । इससे भी हिंसा होगी और पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन नहीं हो पायेगा । .... कपड़े में राग–द्वेष भी होगा और मूर्छा बढ़ती जायेगी जिससे अपरिग्रह महाव्रत का पालन भी नहीं हो पायेगा । इस प्रकार कपड़े की पिच्छी में अनेक दोष हैं । (पृष्ठ २६५)

नॅपकीन रखने में भी ये धोना आदि सब दोष आते ही हैं तथा परिग्रह से रहित होना और शरीर से निर्ममता होना इन मुनिपद के दो बाह्य लक्षणों का अभाव होकर सुखशीलता प्रकट होती है । **इसलिए जैन साधु अपने पास नॅपकीन न रखते हैं, न दूसरों के पास रखवाते हैं ।** अपने व्रतों का नाश करने वाले तथा महान पाप उत्पन्न करने वाले ऐसे कार्य किसी को भी शोभा नहीं देते हैं ।

चश्मा और घड़ी

वर्तमानमें चश्मा और घड़ीका उपयोग दिगम्बर साधुओंके द्वारा होता है। इनमें चश्मा शास्त्राभ्यासमें भी सहायक और मार्गदर्शनमें जीवबाधा दूर करनेमें भी उसका उपयोग होता है, अतः ज्ञान और संयम दोनोंका सहायक होनेसे दिया जा सकता है। किन्तु वह सुन्दरताकी (अथवा फॅशनकी) दृष्टिसे कीमती न देना चाहिए और न उन्हें लेना भी चाहिए। घड़ी न संयमका साधन है और न स्वाध्यायका, अतः उसका दान उपकरण–दान नहीं; न यह देना

चाहिए और न साधु को अपने पास रखना ही चाहिए ।

साधुके लिए प्रातः, सायं और दोपहर सामायिकके काल हैं । प्रातःकाल सूर्योदयसे, सायंकाल सूर्यास्तसे और मध्याह्नकाल मध्यसूर्यसे सहज ही जाना जाता है । करोड़ों ग्रामीण जनोंको बिना घड़ीके ही समय ज्ञान दिनमें तो सहजही होता है, रात्रिमें भी नक्षत्रोंके उदयास्तसे ज्ञान कर लेते हैं । अतः घड़ीका आदान प्रदान संयम साधक न होनेसे उपकरण दानमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता ।

हाँ, चातुर्मास आदि समयमें वर्षायोगके कारण मेघाच्छन्न सूर्य होनेसे अथवा दैनिक कार्यक्रमसे विभिन्न धर्माराधनाओंके हेतु समयकी प्रतीतिमें बाधा होती हो तो श्रावक उस स्थान पर स्थानप्रबन्धकी तरह यदि घड़ी लगा दे तो उससे समय देखनेमें साधुको कुछ बाधा नहीं, पर उस वस्तुको अपने साथ हमेशा रखा नहीं जा सकता ।

वस्त्र और बर्तनकी तरह बैटरी, फाउन्टेन पेन, ग्रामोफोनके रिकार्ड, शब्दग्राही (रिकार्ड बनानेवाली) मशीनें, वस्त्रकी कुटीरें (टेन्ट), चटाइयाँ और बैठनेके काष्ठासन आदि भी साधु अपने साथ नही रख सकता । ये सब परिग्रहमें सम्मिलित हैं, अतः इनका दान भी उपकरणदान नहीं है । साधुके आने पर श्रावक इन चीजों को अर्थात् बैठने को उच्चासन हेतु काष्ठासन, वेत्रासन तथा तृणासन दे सकता है । उनके लिए सामान्य कुटी और स्थान के अभावमें वस्त्रकी कुटी बनाकर उसमें ठहरनेको स्थान दे सकता है । रिकार्डिंग मशीन द्वारा उनके भाषणको रिकार्ड कर सकता है। ये सब साधन गृहस्थ द्वारा यथा समय उपयोगमें लाए जा सकते हैं । पर साधु इन साधनोंका उपयोग स्वीकार करके भी इन साधनोंको स्वीकार नहीं कर सकता । इनका स्वायत्तीकरण परिग्रह ही है ।

उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हुआ कि परिग्रहका दान साधुको नहीं दिया जा सकता । किन्तु मात्र ज्ञान और संयमके साधनभूत सुनिश्चित पदार्थोंका दान ही जिनकी चर्चा उपर आ गई है उपकरणदान के नामसे किया जा सकता हैं । (श्रावकधर्मप्रदीप- पृष्ठ १८९)

कुदान का फल

प्रश्न – साधुओं को कुदान देने का फल क्या होता है ?

समाधान – रत्नत्रय से युक्त जीवों के लिए अपने द्रव्य का त्याग करने या रत्नत्रय के योग्य साधनों के प्रदान करने की इच्छा का नाम दान है । (धवला पुस्तक १३ – पृष्ठ ३८९) इसलिए–यदि आप पात्र को दान दे रहे हो, तो ऐसा द्रव्य मत देना जिससे राग बढ़े । पिच्छी, कमंडल और जिनवाणी ये तीन उपकरण माने जाते हैं निर्ग्रन्थों के । पात्र को वही वस्तु दान में दे जिससे दुःख व (संभालने का) भय न हो, असंयम न हो । उनकी तपस्या व स्वाध्याय में वृद्धि का कारण बने ऐसा ही द्रव्य देना। (पुरुषार्थ देशना –पृष्ठ ३५८–३५९)

मोक्षार्थी संयमपरायण मुनि के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र बढ़ाने वाले (पीछी, कमण्डलु, शास्त्र ऐसे) धर्मोपकरण देने चाहिए। (तत्त्वार्थवार्तिक–७/२२/२८ पृष्ठ – ७३६) क्योंकि दिये जाने वाले अन्न आदि में उपकरणों में ग्रहण करने वाले के तप, स्वाध्याय के परिणामों की वृद्धि की कारणभूतता है। (तत्त्वार्थवार्तिक–७/३९/३, पृष्ठ ७४१)

पात्रों की गुणों की वृद्धि करने वाला द्रव्य यदि अर्पित किया जाता है तो वह दाता को पुण्यास्रव कराने वाला होता है। दोषों की वृद्धि कराने वाला द्रव्य यदि पात्र को दिया जायेगा तो वह दाता को पापास्रव–पाप का बंध कराने वाला होगा । (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार–७/३९–६, पुस्तक ६ – पृष्ठ ६५३)

जो वस्तु साधु के योग्य नहीं है, ऐसे रुपया, कार, बस, फ्रीज, कूलर, पंखा आदि उन्हें नहीं देना चाहिये । (श्रावक कर्तव्य – पृष्ठ १३) **पिच्छी, कमंडलु और शास्त्र के अलावा जो भी दिया जावेगा, वह उपकरण नहीं परिग्रह ही होगा ।...वह साधु के साथ परिग्रह देनेवाले श्रावक को, तथा परिग्रह का समर्थन करनेवालों को भी पाप का कारण है ।** (कर्तव्य बोध – पृष्ठ ३१–३२)

जो दुर्बुद्धि पुरुष शम–भाव से रहित होकर साधुओं को धन देता है, वह निश्चयसे मूल्य देकर दुर्निवार पाप खरीदता है। (अमितगति श्रावकाचार–९/

४३) इसलिए **जिस दान से पात्रता नष्ट होकर व्रत छूट जाए, रत्नत्रय में दोष लग जाए, ऐसा दान उत्तम विद्वानों को कण्ठगत प्राण होने पर भी नहीं देना चाहिए ।** (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार-२०/१५९)

अतः मुनि अमितसागर कहते हैं - **''साधु के लिए ज्ञानोपकरण और संयमोपकरण के अलावा (नॅपकीन, मोबाईल) ऐसी कोई वस्तु नहीं देना चाहिये जिससे साधु एवं धर्म का अपलाप हो ।''** (मन्दिर - पृष्ठ ७८)

जो अज्ञानी उत्तम मुनियों के लिए (संयम का घात करने वाला धन, नॅपकीन, मोबाईल, कम्प्युटर, टीवी, टॉर्च, मोटर, कॅमेरा आदि) पापोत्पादक कुदान देता है वह सम्यक्चारित्र का घात करने से उत्पन्न पाप से नरक में पड़ता है। कुदान देनेवाला महापापी होता है और भव-भव में दरिद्री होता है। (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार-२०/१६१-१६३)

इसलिए **तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी का समाज के लिए ऐसा आदेश है कि - इस कुदान को रोकने की आवश्यकता है । साधुओं को असीमित और अयोग्य वस्तु नहीं देनी चाहिये ।** (ज्योति से ज्योति जलती रहे - पृष्ठ १२९)

४. पत्थर की नाव

जिनधर्म के विराधक

आ. कुन्दकुन्ददेव ने **रयणसार** में कहा है -

आरंभे धण-धण्णे, उवयरणे कंखिया तहासूया ।
वय गुणसील विहीणा, कसाय कलहप्पिया मुहरा।।१०१।।
संघ-विरोह-कुसीला, सच्छंदा रहिय-गुरुकुला मूढा ।
रायादि सेवया ते, जिण-धम्म-विराहया-साहू।।१०२।।

जो साधु आरंभ में धनधान्य में, अच्छे-अच्छे, सुंदर उपकरणों में आकांक्षा रखते हैं, गुणवानों या साधर्मियों में ईर्ष्या रखते हैं, व्रत-गुण-शील से रहित हैं अर्थात् व्रतों में अतिचार, अनाचार लगाते रहते हैं, तीव्रकषायी व कलहप्रिय स्वभावी हैं, व्यर्थ में बहुत बोलते हैं, बकवादी, वाचाल हैं, आचार्य संघ का, उनकी आज्ञा का विरोध करते हैं, कुशील हैं,

व्रतों से च्युत हैं, मात्र बाह्य में नग्न हैं, स्वेच्छाचारी हैं, गुरुकुल में-गुरु या आचार्य संघ में नहीं रहते हैं, हेय-उपादेय के ज्ञान से च्युत हैं, स्व-पर विवेक से शून्य-अज्ञानी हैं, राजा (मंत्री, नेता) आदि की सेवा (प्रशंसा/संगती) करते हैं, धनाढ्य पुरुषों की सेवा-चाकरी (स्तुति) करते हैं वे साधु मात्र भेषधारी हैं। **ये जिनधर्म के विराधक हैं।** (पृष्ठ ७५-७६)

श्रमणों को दूषित करनेवाले कार्य

जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं वायवस्य ववहारं ।
धण-धण्ण-परिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ ।।१०३।।

अर्थ - ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रों की विद्या द्वारा आजीविका करना, वातादि विकार रूप भूत-प्रेत आदि को उतारने के लिए झाड़-फूँक का व्यापार करना,धन-धान्य का ग्रहण करना ये सब कार्य श्रमणों/साधुओं/ मुनिराजों के लिए दोष होते हैं। **अष्टपाहुड** में आचार्य कुन्दकुन्ददेव लिखते हैं -

सम्मूहदि रक्खेदि अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्ख जोणी ण समणो।।लिंगपाहुड-५।।

अर्थात् - **मुनि होकर भी जो नाना प्रकार के प्रयत्नों व्यापारों से परिग्रह का संचय करता है, उसकी रक्षा करता है, तथा उसके निमित्त आर्त्तध्यान करता है, उसकी बुद्धि पाप से मोहित है, उसे श्रमण नहीं पशु समझना चाहिये। वह मुनि कहलाने का अधिकारी नहीं है।** (पृष्ठ ६८४)

जो मुनि भेषधारक हस्तरेखा, मस्तिष्क रेखा, तिल, मसा आदि देखकर ज्योतिष विद्या से आजीविका करते हैं, औषधि जड़ी-बूटियाँ बताकर आजीविका करते हैं तथा जो भूत-प्रेत आदि के लिए झाड़-फूँक कर, मंत्र-तंत्र विद्या आदि के द्वारा आजीविका करते हैं **वे मुनिभेषी मात्र व्यापारी हैं, उन्हें जिनलिंग को दूषित करनेवाले ठग समझना चाहिये।** (रयणसार - पृष्ठ ७६-७७)

णिग्गंथो पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहिं ।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजमतवसंजुदो चावि।।३/६९।।

अर्थात् - **निर्ग्रन्थ मुनिपद धारण कर दीक्षित हुआ मुनि यदि इस**

लोकसम्बन्धी संसारी कर्म–ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र–यंत्रादिक में प्रवर्ते, तो वह मुनि संयम–तप सहित होकर भी लौकिक कहा गया है। (प्रवचनसार – पृष्ठ ३२९)

इसलिए दंभ वचन के स्वभाववाला अर्थात् कुटिल परिणामी, पर की निन्दा करनेवाला, दूसरों के दोषों को प्रकट करने में तत्पर या चुगलखोर, मारण, उच्चाटन, वशीकरण, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, ठगशास्त्र, राजपुत्रशास्त्र, कोकशास्त्र, वात्स्यायनशास्त्र, पितरों के लिए पिण्ड देने के कथन करनेवाले शास्त्र, मांसादि के गुणविधायक वैद्यकशास्त्र, सावद्यशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र में रत हुए मुनि से जो भले ही चिरकाल से दीक्षित है किन्तु **उपर्युक्त दोषों से युक्त है तथा आरम्भ करनेवाला है उससे, कभी भी संसर्ग न करे।** (मूलाचार गाथा ९५९ की टीका, उत्तरार्ध – पृष्ठ १४२)

ध्यान रहे – **वीतराग निर्ग्रन्थ गुरु को न मानकर परिग्रह, लौकिक कार्यों और चमत्कारों में रत को गुरु मानना गुरुमूढ़ता है ।**

मुनियों की दुर्गति

प्रश्न – किन मुनियोंकी दुर्गति होती है ?

समाधान – भगवती आराधना (टीका) में कहा है –

जो भस्म, धूल, सरसों, पुष्प, फल, जल, आदिके द्वारा रक्षा या वशीकरण करता हैं वह **भूतिकर्म कुशील है**। कोई **कोई प्रसेनिकाकुशील** होता है जो अंगुष्ठप्रसेनिका, शशिप्रसेनिका, सूर्यप्रसेनिका, स्वप्नप्रसेनिका आदि विद्याओंके द्वारा लोगोंका मनोरंजन करता है। कोई **अप्रसेनिका कुशील** होता है जो विद्या, मंत्र और औषध प्रयोग के द्वारा असंयमी जनोंका इलाज करता है। कोई **निमित्तकुशील** होता है जो अष्टांग निमित्तोंको जानकर लोगोंको इष्ट–अनिष्ट बतलाता है। जो अपनी जाति अथवा कुल बतलाकर भिक्षा आदि प्राप्त करता है वह **आजीवकुशील** है। जो किसीके द्वारा सताये जानेपर दूसरेकी शरणमें जाता है अथवा अनाथशालामें जाकर अपना इलाज कराता है वह भी आजीवकुशील होता है। जो विद्या प्रयोग आदिके द्वारा दूसरोंका द्रव्य हरने और दम्भप्रदर्शनमें तत्पर रहता है वह **कक्वकुशील** होता है। जो इन्द्रजाल (चमत्कार) आदिके द्वारा लोगों को

आश्चर्य उत्पन्न करता है वह **कुहनकुशील** है। जो वृक्ष, झाड़ी, पुष्प और फलोंको उत्पन्न करके बताता है तथा गर्भस्थापना आदि करता है वह **सम्मूर्च्छनाकुशील** है। जो त्रसजातिके कीट आदिका, वृक्ष आदिका, पुष्प–फल आदिका तथा गर्भका विनाश करता है, उनकी हिंसा करता है, शाप देता है वह **प्रपातनकुशील** है। (पृष्ठ ८५५)

गाथामें आये आदि शब्दसे ग्रहण किये कुशीलोंको कहते हैं – जो क्षेत्र, सुवर्ण (धन), चौपाये (गाड़ी) आदि परिग्रहको स्वीकार करते हैं, हरे कंद, फल खाते हैं, कृत–कारित–अनुमोदनासे युक्त भोजन, उपधि, वसतिकाका सेवन करते हैं, स्त्रीकथामें लीन रहते हैं, मैथुन सेवन करते हैं, आस्रवके अधिकरणोंमें लगे रहते हैं वे सब कुशील हैं। जो धृष्ट, प्रमादी और विकारयुक्त वेष (हेअर स्टाईल अथवा विशिष्ट दाढ़ी मूँछ) धारण करता हैं वह **कुशील** है।

अब संसक्तका स्वरूप कहते हैं – चारित्रप्रेमियों में चारित्रप्रेमी, और चारित्रसे प्रेम न करनेवालोंमें चारित्रके अप्रेमी, इस तरह जो नटकी तरह अनेक रूप धारण करते हैं वे संसक्त मुनि हैं। जो पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होते हैं, ऋद्धिगारव, सातगारव और रसगारवमें लीन होते हैं, स्त्रियोंके विषयमें रागरूप परिणाम रखते हैं, और **गृहस्थजनोंके प्रेमी होते हैं वे संसक्त मुनि हैं।** वे पार्श्वस्थके संसर्गसे पार्श्वस्थ, कुशीलके संसर्गसे कुशील और स्वच्छन्दके सम्पर्कसे स्वयं भी स्वच्छन्द होते हैं।

अब यथाच्छन्दका स्वरूप कहते हैं – **जो बात आगममें नहीं कही है, उसे अपनी इच्छानुसार जो कहता है वह यथाच्छन्द है।** जैसे– वर्षामें जलधारण करना अर्थात् वृक्षके नीचे बैठकर ध्यान लगाना असंयम है। छुरी, कैंची आदिसे केश काटनेकी प्रशंसा करना और कहना कि केशलोच करनेसे आत्माकी विराधना होती है। पृथ्वीपर सोनेसे तृणोंमें रहनेवाले जन्तुओंको बाधा होती है। उद्दिष्ट भोजनमें कोई दोष नहीं है क्योंकि भिक्षाके लिये पूरे ग्राममें भ्रमण करनेसे जीव निकायकी महती विराधना होती है। घरके पात्रों में भोजन करनेमें कोई दोष नहीं है ऐसा कहना। जो हाथमें भोजन करता हैं उसे परिशातन दोष लगता है ऐसा कहना। आजकल आगमानुसार आचरण

करनेवाले नहीं हैं ऐसा कहना। इत्यादि। (पृष्ठ ८५६)

इसी प्रकार की अन्य भी आगमविरुद्ध विसंगतियों का प्रचार-प्रसार करनेवाले साधु यथाच्छन्द अर्थात् स्वच्छन्द कहे जाते हैं। इनसे जिनागम का अत्यधिक विलोप होता है और निर्दोष मोक्षमार्ग अत्यन्त दूषित होता जाता है। **पत्थर की नाव के सदृश आगमविरोधी ऐसे साधु स्वयं संसार समुद्र में डूबते हैं और अन्य को भी डुबोते हैं।**

नित्य एक ही वसतिका में रहते हैं, एक ही क्षेत्र में रहते हैं, एक ही संस्तर पर सोते हैं, **गृहस्थों के घरों में जाकर बैठ जाते हैं,** गृहस्थों के (योग्य) (मोबाईल, कम्प्युटर, कूलर, ए.सी. आदि) उपकरणों का उपयोग करते हैं, प्रतिलेखना किए बिना ही वस्तु को ग्रहण कर लेते हैं, या दुष्टतापूर्वक प्रतिलेखना करते हैं, **सुई, कैंची, नाखून कतरनी (नेलकटर), छुरी, कान का मैल निकालने की सींक या साधन (यंत्र, मालाएँ, कम्प्युटर, अपने फोटो, नॅपकीन, मोबाईल, गाड़ी, नौकर) आदि सामग्रियाँ पास में रखते हैं, क्षारचूर्ण, सुरमा, नमक, घी एवं नाना प्रकार के तेल आदि बिना कारण ग्रहण करते हैं या अपने पास रखते हैं वे पार्श्वस्थ साधु हैं।**

जो इच्छानुसार लम्बा-चौड़ा संस्तरा बिछाते हैं और रात्रि भर मनमाना सोते हैं वे उपकरण-बकुश साधु हैं, जो दिन में सोते हैं वे देह-बकुश हैं, ये दोनों भी पार्श्वस्थ हैं। जो बिना कारण (मल निकालने/स्वच्छ करने के लिए) पैर आदि धोते हैं, तेल मर्दन करते हैं, वस्त्रों को धोते हैं, झटकते हैं, सुखाते हैं एवं रंगवाते हैं, गण के माध्यम से उपजीविका करते हैं, तीन अथवा पाँच मुनियों की ही (अपने संघ के साधुओं की ही) सेवा में तत्पर रहते हैं **वे सब पार्श्वस्थ साधु हैं** और जो अपनी सुखशीलता के कारण बिना प्रयोजन अयोग्य का सेवन करते रहते हैं वे साधु तो सर्वथा पार्श्वस्थ ही होते हैं। (मरण कण्डिका - पृष्ठ ५५७)

पुनः **भगवती आराधना** में कहते हैं -

सुहसादा किंमज्झा गुणसायी पावसुत्तपडिसेवी ।
विसयासापडिबद्धा गारवगरुया पमाइल्ला ।।१९४६।।

अर्थ - वे सुखशील होते हैं, मुझे किसीसे क्या, ऐसा मानकर वे संघके सब कार्योंमें अनादरभाव रखते हैं, सम्यग्दर्शन आदि गुणोंमें उनका उत्साह नहीं होता। अपने और दुसरोंके अशुभ परिणामोंको तथा मिथ्यात्व, असंयम और कषायको बढ़ानेवाला शास्त्र पापसूत्र है। **निमित्तशास्त्र, वैद्यक,** कौटिल्यशास्त्र (राजनीति), स्त्री पुरुषके लक्षण बतलानेवाला कामशास्त्र, धातुवाद (भौतिक), **काव्य, नाटक,** चोरशास्त्र, शस्त्रोंका लक्षण बतलाने वाला शास्त्र, प्रहार करनेकी विद्या, चित्रकला, गांधर्व (नाच-गाना), गन्धशास्त्र, युक्तिशास्त्र **आदि पापशास्त्रोंमें उनका आदर होता है,** उसीका वे अध्ययन करते हैं। इष्ट विषयोंकी आशामें लगे रहते हैं, तीन गारव में आसक्त होते हैं । विकथा आदि पन्द्रह प्रमादोंमें युक्त होते हैं । (पृष्ठ ८५७)

तथा- उबटन लगाना, **तेलकी मालिश करना,** उपकरण नष्ट हो जायेगा इसलिए उससे अपना कार्य न करना, जैसे पिच्छीके नाशके भयसे उससे प्रमार्जन न करना, कमंडलु आदिको धोना (रंगवाना)। वसतिके तृण आदि खानेको अथवा उसके टूटने आदिको ममत्व भावसे रोकना, मेरे कुलमें बहुत यतियोंका प्रवेश सह्य नहीं है ऐसा कहना, प्रवेश करने पर कोप करना, बहुत यतियोंको प्रवेश देनेका निषेध करना, अपने कुलकी (अपनेही संघ के साधुओं की) ही वैयावृत्य करना, निमित्त आदिका उपदेश देना, ममत्व होनेसे ग्राम, नगर अथवा देशमें ठहरनेका निषेध न करना, सम्बन्धी यतियोंके सुखसे अपनेको सुखी और दुःखसे दुःखी मानना इत्यादि अतिचार हैं। **पार्श्वस्थ आदि मुनियोंकी वन्दना करना, उन्हें उपकरण आदि देना, उनका उल्लंघन करनेमें असमर्थ होना, इत्यादि अतिचारोंकी आलोचना करता है।** (अर्थात् ये क्रियायें दोषास्पद हैं।) (पृष्ठ ४२३)

गंथअणियत्ततण्हा बहुमोहा सबलसेवणासेवी।
सद्दरसरूवगंधे फासेसु य मुच्छिदा घडिदा ।।१९४८।।

परलोगणिप्पिवासा इहलोगे चेव जे सुपडिबद्धा।
सज्झायादीसु य जे अणुट्ठिदा संकिलिट्ठमदी ।।१९४९।।
सव्वेसु य मूलुत्तरगुणेसु तह ते सदा अइचरंता।
ण लहंति खवोवसमं चरित्तमोहस्स कम्मस्स।।१९५०।।
एवं मूढमदीया अवंतदोसा करेंति जे कालं।
ते देवदुब्भगत्तं मायामोसेण पावंति।।१९५१।।

अर्थात् – उनकी परिग्रहकी तृष्णा कभी तृप्त नहीं होती। अज्ञानमें डूबे रहते हैं। गृहस्थोंके आरम्भमें फँसे होते हैं, शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्शमें ममत्वभाव रखते हैं। **परलोककी चिन्ता नहीं करते। इसी लोक सम्बन्धी कार्यों में लगे रहते हैं।** स्वाध्याय आदिमें उद्यम नहीं करते। उनकी मति संक्लेशमय होती है। सदा मूलगुणों और उत्तरगुणोंमें अतिचार लगाते हैं। इससे उनके चारित्रमोहका क्षयोपशम नहीं होता। **इस प्रकार दोषोंको दूर न करनेवाले वे मूढ़बुद्धि जब मरते हैं तो मायाचारके कारण अभागे देव होते हैं।** (अर्थात् उनकी देवदुर्गति होती है।) (पृष्ठ ८५८)

मूलाचार (टीका) में कहा है – **जो साधु रस आदि में आसक्त होता हुआ तंत्र–मंत्र और भूतिकर्म आदि का प्रयोग करता है, हँसी–मजाक आदि रूप बहुत बोलता है, वह इन कार्यों के निमित्त से वाहन जाति के देवों में जन्म लेता है।** (पूवार्ध पृष्ठ ६९)

जो संघ, चैत्य और सूत्र (शास्त्र) के प्रति विनय नहीं करतें है और (यंत्र, मंत्र, कलश, अंगुठी, माला आदि देकर) दूसरों को ठगने में कुशल हैं, वे इन किल्विष–पाप कार्यों के द्वारा पटह आदि वाद्य बजानेवाले किल्विषिक जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं। (पृष्ठ ७०)

सम्मत्त रहिद चित्तो जोइस मंतादिएहिं वट्टंतो ।
णिरयादिसु बहुदुक्खं पाविय पविसइ णिगोदम्मि ।।२/३५८।।

अर्थात्– जिसका चित्त सम्यग्दर्शनसे रहित है तथा जो ज्योतिष और मंत्रादिकोंसे आजीविका करता है ऐसा जीव नरकादिकोंमें बहुत दुःख पाकर निगोदमें प्रवेश करता है। (तिलोय पण्णत्ती – प्रथम खंड, पृष्ठ १०८)

अवन्दनीय

मूलाचार प्रदीप में कहा है –

एषां पूर्वोदितांना च जातु कार्या न वन्दना।
विनयाद्या न शास्त्रादि–लाभाभीत्यादिभिर्बुधैः।।९६९।।
अमीषां भ्रष्टवृत्तानां ये कुर्वन्ति स्व–कारणात् ।
विनयादि नुतिस्तेषां क्व बोधिर्निश्चयः कथम्।।९७०।।

अर्थात् – **बुद्धिमान् पुरुषों को किसी शास्त्र आदि के लोभ से वा किसी भय से भी ऊपर कहे हुए पार्श्वस्थ आदि मुनियों की वन्दना कभी नहीं करनी चाहिए और न इनकी विनय करनी चाहिए ।**

जो पुरुष अपने किसी भी प्रयोजन से भ्रष्ट चारित्र को धारण करने वाले इन पार्श्वस्थ मुनियों की विनय करते हैं वा इनकी वन्दना करते हैं उनके रत्नत्रय, श्रद्धा और निश्चय कभी नहीं हो सकता। (पृष्ठ १५७)

इसका कारण यह है कि जो श्रमण धर्म के अनुरागरूप संवेग में आलसी हैं, समीचीन आचार से हीन हैं, खोटे आश्रय से संपन्न हैं उनका संसर्ग नहीं करो, क्योंकि आत्मा भी ऐसे के संसर्ग से ऐसा ही हो जायेगा।

आयरियत्तणमुवयाइं जो मुणि आगमं ण याणंतो ।
अप्पाणं पि विणासिय अण्णे वि पुणो विणासेई ।।९६५।।

अर्थात् – जो मुनि आगम के बिना आचरण करता है वह स्वयं को नरक आदि दुर्गतियों में पहुँचा देता है और अन्य जनों को भी कुत्सित उपदेश के द्वारा उन्हीं दुर्गतियों में प्रवेश करा देता है, इसलिए ऐसे आचार्य से भी डरना चाहिए। (मूलाचार उत्तरार्ध – पृष्ठ १४४–१४५)

इस प्रकार जिन्होंने जिनमार्ग को छोड़ रक्खा है, ऐसे अनेक कुगुरु हैं। हे भाई ! तू पापोंसे बचने के लिये सर्प के समान उनका दूर से ही त्याग कर । (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार – ३२/१५१)

मूलाचार (टीका) (पूर्वार्ध) में कहा है – **विरत मुनि मोहादि से असंयत माता–पिता आदि की, या अन्य किसी की स्तुति न करे। भय से या लोभ आदि से राजा (मंत्री, सेठ–साहुकार**

आदि) की स्तुति न करे। ग्रहों की पीड़ा आदि के भय से सूर्य आदि (नवग्रह अथवा कालसर्प योग निवारण विधान आदि) की पूजा न करे। शास्त्रादि ज्ञान के लोभ से अन्य मतावलंबी पाखंडी साधुओं की स्तुति न करे। आहार आदि के निमित्त श्रावक की स्तुति न करे, एवं स्नेह आदि से पार्श्वस्थ आदि मुनियों की स्तुति न करे। तथैव अपने गुरु भी यदि हीनचारित्र हो गये हैं तो उनकी भी वन्दना न करे तथा अन्य भी जो अपने उपकारी हैं किन्तु असंयत हैं उनकी वन्दना न करे। (पृष्ठ ४३६)

शास्त्रानुसार चर्या होने पर ...

प्रश्न – एक मुनि शास्त्रानुसार चर्या करने वाले दूसरे मुनि के साथ कैसा व्यवहार करता है ?

समाधान – आ. अर्हद्बली ने मूलसंघ में नन्दिसंघ, सेनसंघ, सिंहसंघ और देवसंघ इन चार संघों की स्थापना की थी। इन सभी संघों के सिद्धांत एवं चर्या सब समान होने से उनमें पंक्ति भेद नहीं है (नीतिसार समुच्चय–२३) शास्त्रानुसार चर्या करनेवाला मुनि चाहे स्वसंघ का हो अथवा परसंघ का हो सम्यक्त्व गुण से युक्त मुनि उसका उचित आदर करके उसके साथ हर्षपूर्वक यथायोग्य वंदना–प्रतिवंदना आदि व्यवहार करते हैं। इसलिए आगमोक्त पद्धति से आचरण करने वाले साधुओं के द्वारा इसप्रकार परस्पर का योग्य विनय करने के अनेक उदाहरण देखे जाते हैं। जैसे–जब आचार्य श्री धर्मसागरजी किशनगड पहुँचे तो आ. श्री. ज्ञानसागर जी अपने शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी आदि संघ के साथ लगभग २ किलोमीटर नगर के बाहर चलकर गए और अत्यन्त श्रद्धाभक्ति पूर्वक आचार्यश्री के दर्शन किये। (आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज अभिवन्दन ग्रन्थ – पृष्ठ १२३)

इसी प्रकार जब आचार्य विद्यासागर जी का श्री संघ महावीरजी पहुँच गया। कुछ ही समय बाद वहाँ परमपूज्य आचार्यकल्प श्रुतसागर जी ससंघ पहुँचे। जब वह संघ महावीरजी पहुँचा तो परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी ने ससंघ उनकी अगवानी की। (ज्ञान के हिमालय – पृष्ठ ३८)

सन १९८९ में टड़ा ग्राम में गजरथ महोत्सव होना था। वहाँ के लोग आचार्य महाराज से निवेदन करने आए। महाराज जी ने हम तीन–चार साधुओं को बुलाकर वहाँ जाने का संकेत कर दिया। हमने उनके चरणों में माथा टेककर आज्ञा स्वीकार कर ली और जाना तय हो गया। विहार करने से पहले हम सभी को अपने समीप बुलाकर आचार्य महाराज ने समझाया कि सुनो, **''वहाँ जो भी आगम के अनुकूल आत्म–कल्याण में लगे हुए साधुजन आएँ, उन्हें यथायोग्य विनय करना।''** (आत्मान्वेषी – पृष्ठ १११)

आचार्यश्री विद्यासागर जी के इस उत्तम आदेश के विपरीत जो श्रेष्ठ निर्ग्रन्थ गुरुओं का अनादर करता है, वह अगले जन्म में मूर्ख होता है। (कर्मफल दीपक – पृष्ठ ८) अथवा जो वीतराग निर्ग्रन्थ साधुओं को नमस्कार नहीं करता है, वह अगले जन्म में ऊँट की पर्याय पाता है। (पृष्ठ १८)

अरिष्ट निवारण

कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है –

जइ देवो वि य रक्खदि मंतो तंतो य खेत्तपालो य ।
मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति ।।२५।।

भावार्थ – मनुष्य अपनी और अपने प्रियजनोंकी रक्षाके लिये देवी–देवताओंकी मनौती करते हैं। **कोई मृत्युंजय आदि मंत्रोंका जप करते हैं। (कोई नवग्रह विधान, कालसर्प–योग निवारण विधान करते हैं।)** कोई टोटका करवाते हैं। कोई क्षेत्रपाल को पूजते हैं। **किन्तु उनकी ये सब चेष्टाएँ व्यर्थ हैं,** क्योंकि इनमेंसे कोई भी उन्हे मृत्युके मुखसे नहीं बचा सकता। यदि बचा सकता तो सब मनुष्य अमर हो जाते।

अप्पाणं पि चवंतं जह सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि ।
तो किं छंडदि सग्गं सव्वुत्तम भोय संजुत्तं ।।२९।।

यदि देवोंका स्वामी इन्द्र मरणसे अपनी भी रक्षा करनेमें समर्थ होता तो सबसे उत्तम भोगसामग्रीसे युक्त स्वर्गको क्यों छोड़ता? (पृष्ठ १२–१४)

सो ही **छहढाला** में कहा है –

सुर–असुर खगाधिप जे ते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ।।५/४।।

भूधरदास कृत **बारह भावना** में भी कहा है –

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार ।
मरती बिरिया जीवको, कोई न राखनहार ।।२।।

अतः मृत्युसे कोई नहीं बचा सकता यह सुनिश्चित है ।

ग्रहशान्ति – एक ढकोसला

प्रश्न – क्या ग्रह मनुष्यों पर कुछ संकट आदि ला सकते हैं ? अथवा उनकी पूजा और शान्ति करने पर क्या वे मनुष्यों को सम्पत्ति, सुख, शान्ति आदि दे सकते हैं ?

समाधान – ग्रह–नक्षत्र न अच्छा करते हैं, न बुरा । अच्छा–बुरा तो हमारे कर्मानुसार होता है । (प्रश्न आज के – पृष्ठ १२३)

कल्याणकारकम् में कहा भी हैं – मंगल आदि ग्रहों के प्रकोपसे भी रोगोंकी उत्पत्ति नहीं होती है । लेकिन कर्म के उदय और उदीरणा से ही रोग उत्पन्न होते हैं । (७/१३, पृष्ठ १०८)

वरांग चरित्र में कहा है – **ग्रहों की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता के कारण ही संसार का भला अथवा बुरा होता है इस प्रकार जो लोग उपदेश देते हैं, वे संसार के भोले, अविवेकी प्राणियों को साक्षात् ठगते हैं ।** ... यह देखकर कौन ऐसा बुद्धिमान् व्यक्ति है, जो कि इस लोकप्रवाद पर विश्वास करेगा कि संसार के सुख–दुख के कारण सूर्य आदि ग्रह ही है । (२४/३१,३६ – पृष्ठ ४७३, ४७५)

आ. गुप्तिनंदी के अनुसार भी – **कुंडली या ग्रह हमारा तनिक भी शुभाशुभ या हिताहित करने में समर्थ नहीं हैं ।** (श्री नवग्रह शांति विधान – पृष्ठ ७) **कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा** में कहा है –

एवं पेच्छंतो वि हु गह–भूय–पिसाय–जोइणी जक्खं ।
सरणं मण्णइ मूढो सुगाढ–मिच्छत्त भावादो ।।२७।।

भावार्थ – मनुष्य देखता है कि संसारमें कोई शरण नहीं है, एक दिन सभीको

मृत्युके मुखमें जाना पड़ता है, इस विपत्तिसे उसे कोई भी नहीं बचा सकता । फिर भी **उसकी आत्मामें मिथ्यात्वका ऐसा प्रबल उदय है, कि उसके प्रभावसे वह अरिष्ट निवारणके लिये ज्योतिषियों के चक्करमें फँस जाता है, और सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु नामके ग्रहोंको तथा भूत, पिशाच, चण्डिका वगैरह व्यन्तरोंको शरण मानकर उनकी आराधना करता है ।**

जिसने किसी को रोग नष्ट करने के लिए कुदेवादि की पूजा बताकर, किसी रोगी को ग्रह–नक्षत्र का भय दिखाकर उसका धन (नवग्रह अथवा कालसर्प योग निवारण विधान आदि) ग्रह–दान (पूजा) में नष्ट कराया है इत्यादि कुभावों से भवान्तर में वह मनुष्य होने पर उसका भी धन रोग के निमित्त से नष्ट होता ही है । (सुदृष्टि तरंगिणी (प्रश्नमाला कर्मविपाक) – पृष्ठ ७०)

लक्ष्मी–लाभ

जो सम्यग्दृष्टि पुरुष मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा रचित और अज्ञानी मनुष्यों के चित्तमें चमत्कार (भक्ति) को उत्पन्न करनेवाले मणि, मंत्र–तंत्र आदिको देखकर या सुनकर उनमें धर्मबुद्धिसे रुचि (श्रद्धा) नहीं रखता वह व्यवहारसे अमूढ़दृष्टि अंगका पालक कहा जाता है। (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा (टीका)–४१८,पृष्ठ ३१६)

जैनधर्म चमत्कारवादी धर्म नहीं है । उसकी जड़ अध्यात्मवाद है । ... जो लोग सम्पत्ति अथवा सांसारिक कार्यों की सिद्धि के लिए चमत्कार के पीछे लगते हैं, वे जैनधर्म का मर्म कभी नहीं समझ सकते । ऐसा करने वाले गुरु भी आत्मवंचना करने वाले हैं और उनका अनुसरण (भक्ति) करने वाले लोग भी जैनधर्म के मर्म से दूर रहेंगे । (स्वानंद विद्यामृत – पृष्ठ २१० (हिन्दी अनुवाद)) **कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा** में कहा है –

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणदि उवयारं ।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ।। ३१९ ।।

भावार्थ – शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणपती, चण्डी, काली, यक्षी, यक्ष,

क्षेत्रपाल, वगैरह अथवा सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह वगैरह सोना, रत्न, स्त्री, पुत्र, हाथी, घोड़े आदि सम्पदा देनेमें असमर्थ हैं । इसी तरह ये सब देवता सुख, दुःख, रोग, नीरोगता आदि देकर या हरकर जीवका अच्छा या बुरा भी नहीं कर सकते हैं । जीव जो अच्छा या बुरा कर्म करता है उसका उदय ही जीवको सुख, दुःख, आरोग्य अथवा रोग आदि करता है । (पृष्ठ २२६)

अतः किसीने ठीक ही कहा **है–** तभी तक चन्द्रमाका बल है, तभी तक ग्रहोंका, तारोंका और भूमिका बल है, तभी तक समस्त वांछित अर्थ सिद्ध होते हैं, तभी तक जन सज्जन हैं, तभी तक मुद्रा और मंत्र–तंत्रकी महिमा हैं और तभी तक पौरुष भी काम देता है जबतक यह पुण्य है । पुण्यका क्षय होने पर सब बल क्षीण हो जाते हैं ।।३२०।। (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा (टीका)– पृष्ठ २२७)

मंत्र, यंत्र और कलश आदि के माध्यम से यदि लक्ष्मी आ जाती, तो वह मंत्र आदि देनेवाले साधु दूसरे लोगों से क्यों पैसे माँगते ?

जो विभूति के लिये तंत्र–मंत्र के पीछे दौड़ रहे हैं । उन्हें न तो अपने पुण्य पर विश्वास है और न जिनवाणी पर । ..... ध्यान रखना, अज्ञानी चमत्कारों में घूमता है और ज्ञानी चेतन – चमत्कार (आत्म–साधना) में रमण करता हैं । (तत्त्वसार देशना – पृष्ठ ६५)

अज्ञानी जीव व्यर्थ की आकुलता करके दुःखी हुआ करते हैं और ढोंगी–पाखण्डी साधुओं के चक्कर में आकर अपना सब–कुछ खो बैठते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि **विवेक के बिना मनुष्य पग–पग पर ठगाया ही जाता है।**

इसलिए गृहस्थों को भी चाहिये कि वे हर बात में यंत्र और मंत्र के चक्कर में पड़ने के बजाय धर्म और धर्मफल में दृढ़ श्रद्धा रखते हुए आ. कुशाग्रनन्दीकृत **बारह भावना** के इस दोहे का चिन्तन करें –

यंत्र – मंत्र औषधि वृथा, रक्षक हो गए वाम ।
तन पिंजर खाली रहा, रहा न आत्माराम ।।२७।।

* * * * *

भक्ताभक्त–कृपाण–पुष्पनिवहौ लोष्टोऽथवा भास्करं
साम्यं यस्य सदा विभाति जगति श्रेयस्करं भास्वरम् ।
नित्यं श्री सुविधिर्वसेद् हृदि सदा साम्यं च मे मानसि
आकांक्षास्ति सुवन्द्यसागर मुनेः तस्या भवेत् पूर्णता ।।

५. आहार

आहारचर्या

प्रश्न – साधु किन परिणामों से आहार लेते हैं ?

समाधान – स्वादिष्ट शीतल पदार्थ मिल जाये तो उत्तम रहेगा क्योंकि उससे उपवास आदि की दाह का शमन हो जायेगा । दूध, रबड़ी मिले तो अच्छा है । **घृत से बने पकवान मिल जायें, अच्छे फल और उनका रस आहार में मिल जाये,** अच्छा खट्टा–मीठा, चरपरा भोजन मिलेगा तो स्वास्थ अच्छा रहेगा **ऐसी अभिलाषा दिगम्बर मुनि कभी (प्रत्यक्ष में तो) क्या स्वप्न में भी नहीं करते ।** (कौन कैसे किसे क्या दे ?– पृष्ठ १६) **मूलाचार (उत्तरार्ध)** में कहा है–

सीदलमसीदलं वा सुक्कं लुक्खं सिणिद्ध सुद्धं वा ।
लोणिदमलोणिदं वा भुजंति मुणी अणासादं ।।८१६।।

गाथार्थ–ठण्डा हो या गरम, सूखा हो या रुखा, चिकनाई सहित हो या रहित, लवण सहित हो या रहित–ऐसे स्वादरहित आहारको मुनि ग्रहण करते हैं ।

आचारवृत्ति– शीतल–पूर्वाण्ह बेला में बनाया गया होने से जो उष्णपने से रहित हो चुका है ऐसा भोज्य पदार्थ, अशीतल–उसी क्षण ही उतारा हुआ होने से जो गरम–गरम है ऐसे भात आदि पदार्थ, रुक्ष–घी, तेल, आदि से रहित अथवा कोदों व मकुष्ट–अन्नविशेष आदि पदार्थ, शुष्क– दूध, दही, व्यंजन अर्थात् साग, चटनी आदि से रहित, स्निग्ध–घृत आदि सहित शालिधान का भात आदि, शुद्ध–चूल्हे से उतारा गया मात्र–जिसमें किंचित भी कुछ डाला नहीं गया है, नमक सहित भोजन या नमक रहित पदार्थ ऐसे

भोजन को मुनि जिह्वा का स्वाद न लेते हुए ग्रहण करते हैं। अर्थात् **ठण्डे गरम आदि प्रकार के आहार में राग-द्वेष न करते हुए समता भाव से स्वाद की तरफ लक्ष्य न देते हुए मुनि आहार लेते हैं** । (पृष्ठ ६३)

जोगेसु मूलजोगं भिक्खाचरियं च वण्णियं सुत्ते ।
अण्णे य पुणो जोगा विण्णाणविहीणएहिं कया ।।९३९।।

अर्थात् - आगम में योगों में मूलयोग भिक्षा चर्या ही कही गयी है। किन्तु इससे अन्य योगों को विज्ञान से हीन मुनियों ने ही किया हैं ।

आचारवृत्ति - संपूर्ण मूलगुणों में और उत्तरगुणों में मूलयोग- प्रधानव्रत भिक्षाशुद्धि है जिसका वर्णन कृत-कारित-अनुमोदनारहित प्रासुक भोजन की समय पर उपलब्धि के रूप में जिन प्रवचन में किया गया है। अत: भिक्षाशुद्धि को छाड़कर उपवास, त्रिकाल योग अनुष्ठान आदि अन्य योगों को वे ही करते हैं जो विज्ञान अर्थात् चारित्र से रहित हैं और परमार्थ को नहीं जानते हैं। **आहार की शुद्धिपूर्वक जो थोड़ा भी तप किया जाता है वह शोभन है।** (मूलाचार उत्तरार्ध - पृष्ठ १३२)

गाय घास डालने वाले को नहीं देखती, सिर्फ घास को ही देखती है; उसी प्रकार मुनि भी आहार दाता के रूप-रंग (और धन-संपत्ति) को नहीं देखते, मात्र भोजन की शुद्धता और सात्विकता को देखते हैं । (अमृत कलश - पृष्ठ १५९)

यदि तुम ड्रायफ्रुट खाकर व्रत करते रहो तो शरीर पुष्ट हो जाएगा, लेकिन आत्मबल काफी कमजोर हो जायेगा । (कुछ तो है - पृष्ठ २४५) शरीर को पुष्ट करने के लिए जो साधु आहार लेता है उसकी सांसारिक दु:खों से कभी मुक्ति नहीं हो सकती । (स्वानंद विद्यामृत - पृष्ठ १४९ (हिन्दी अनुवाद)) **परमात्मप्रकाश** में कहा है -

जे सरसिं संतुट्ठ-मण विरसी कसाउ वहंति ।
ते मुणि भोयण-घार गणि णवि परमत्थु मुणंति ।।१११*४।।

भावार्थ - जो कोई वीतरागमार्गसे विमुख हुए योगी रससहित स्वादिष्ट आहारसे खुश होते हैं - कभी किसीके घर छह रसयुक्त आहार पावें तो मनमें हर्ष कर (उस) आहार देनेवालेसे प्रसन्न होते हैं, यदि किसीके घर

रसरहित भोजन मिले तो कषाय करते हैं - उस गृहस्थको बुरा समझते हैं, **वे तपोधन (मुनि) नहीं हैं, भोजनके लोलुपी हैं-गिद्धपक्षीके समान हैं** । ऐसे लोलुपी यति देहमें अनुरागी होते हैं, परमात्म-पदार्थको नहीं जानते ।

और यतीका यही धर्म है कि अन्न-जलादिमें राग न करे, और मान-अपमानमें समताभाव रक्खे । गृहस्थके घर जो निर्दोष आहारादिक जैसा मिले वैसा लेवे, चाहे (केवल दाल-रोटी अथवा) चावल मिले, चाहे अन्य कुछ मिले । जो कुछ मिले उसमें हर्ष-विषाद न करे । दूध, दही, घी, मिष्टान्न (नाना प्रकारके फल) इनमें इच्छा न करे । यही जिनमार्गमें यती (मुनियों) की रीति है । (पृष्ठ २३१-२३२)

आहार के प्रति उनके मन में जरा भी ममत्वभाव नहीं होता । (कौन कैसे किसे क्या दे ? - पृष्ठ १९) इसलिए आ. देवनन्दि ने कहा हैं- **मुनि कभी किसी श्रावक से अपने आहार के बारे में एक शब्द भी नहीं कहते । श्रावक भक्तिपूर्वक जैसा देते हैं वैसा ही वे मौनपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं** । (देव भाष्य - पृष्ठ ७५)

शुद्ध आहारचर्या का महत्त्व

मूलाचार प्रदीप में कहा है -

मूलोत्तरगुणेष्वत्र भिक्षाचर्योदिता जिनै: ।
प्रवरा तां विना विश्वे ते कृता: स्युर्निरर्थका: ।।२५५४।।

अर्थ - भगवान जिनेन्द्रदेव के मत में समस्त मूलगुण और उत्तरगुणों में भिक्षाके लिये चर्या करना ही उत्तम गुण माना जाता है, **उस शुद्ध भिक्षाचर्या के बिना बाकी के समस्त गुण निरर्थक ही बतलाये हैं।** (पृष्ठ ३९२) इसलिए कहा है -

इत्येषाशन शुद्धिश्चानुष्ठेया यत्नतोन्वहम् ।
विश्वधर्मखनी सारा वृत्तमूला गुणाकरा ।।५६८।।

इस प्रकार कही हुई यह भोजन शुद्धि मुनियों को प्रयत्न पूर्वक प्रतिदिन करनी चाहिए। क्योंकि **यह भोजन शुद्धि समस्त धर्मों की खानि है, सारभूत है, चारित्र की जड़ है और गुणोंकी खानि है।**

(पृष्ठ ८९)

भगवती आराधना (टीका) में कहा है – चारित्र में उद्योग और उपयोग ही तप है। (पृष्ठ २९) अत: शुद्ध आहार खाकर तप करना चाहिये। अशुद्ध आहार करके नहीं। (पृष्ठ २५६)

दसवीं प्रतिमाधारी के लिए भी ऐसी शास्त्राज्ञा है कि – उस व्रती श्रावक को अपने वा दूसरे के घर नीरस व सरस – अनेक प्रकारके आहार में जान–बूझ कर कभी सम्मति नहीं देनी चाहिए। (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार–२४/११)

इसलिए **जो मुनि अपने आहार के निमित्त साधन–सामग्री–चौका आदि साथ लेकर चलते हैं उनकी एषणा समिति चिन्तनीय है।** (सम्यक् चारित्र चिन्तामणि:–४/५१ – पृष्ठ ५१) परन्तु साधु के द्वारा कृत–कारित–अनुमोदना से रहित श्रावकों के द्वारा ग्राम में अथवा कही अन्यत्र जाकर दिया गया आहार लेने में दोष नहीं है। **क्योंकि मुनि यदि मन–वचन–काय एवं कृत–कारित अनुमोदना से रहित होकर निर्ग्रन्थों के लिये बने आहार को लेते हैं तो उनके लिये वह आहार निर्दोष आहार है।** (चलते फिरते सिद्धों से गुरु – पृष्ठ ६८)

साधु आने के बाद...

प्रश्न– क्या चौके में साधु आने के बाद कोई नई वस्तु बना सकते हैं?

समाधान – आहार विधि विज्ञान में कहा है – **चौके में साधु आने के पश्चात् शीलपैक डिब्बा वगैरह न खोले। और न हि फल वगैरह काटे।** (पृष्ठ १५) क्योंकि **मूलाचार उत्तरार्ध** में कहा है –

जो भुंजदि आधाकम्मं छज्जीवाणं घायणं किच्चा ।
अबुहो लोल सजिब्भो ण वि समणो सावओ होज्ज ।।९२९।।

आचारवृत्ति – छह जीव निकायों का घात करके अध:कर्म से बने हुए आहार को लेता है वह अज्ञानी लंपट जिह्वा के वशीभूत है। वह श्रमण नहीं रहता है बल्कि श्रावक हो जाता है। अथवा, वह न श्रमण है न ही श्रावक है, वह उभय के धर्म से रहित होता है। ।। ९२९ ।। और भी बताते हैं –

पयणं व पायणं वा अणुमणचित्तो ण तत्थ बीहेदि ।
जेमंतो वि सघादी ण वि समणो दिट्ठिसंपण्णो ।।९३०।।
ण हु तस्स इमो लोओ ण वि परलोओ उत्तमट्ठभट्टस्स ।
लिंगग्गहणं तस्स दु णिरत्थयं संजमेण हीणस्स ।।९३१।।

गाथार्थ – जो पकाने या पकवाने में अथवा अनुमोदना में अपने मन को लगाता है उनसे डरता नहीं है वह आहार करते हुए भी स्वघाती है, सम्यक्त्व सहित श्रमण नहीं है। उस उत्तमार्थ से भ्रष्ट के यह लोक भी नहीं है और परलोक भी नहीं है। संयम से हीन उसका मुनि वेष ग्रहण करना व्यर्थ है।

पयणं पायणमणुमणणं सेवंतो ण वि संजदो होदि ।
जेमंतो वि य जह्मा ण वि समणो संजमो णत्थि।।९३४।।

आचारवृत्ति: **जो भोजन बनाने, बनवाने और अनुमोदना करने रूप कृत–कारित–अनुमति से युक्त है वह संयत नहीं है।** वैसा आहार करने से वह श्रमण नहीं कहला सकता है, क्योंकि उस में संयम नहीं है। (पृष्ठ १२८–१३०)

वदसीलगुणा जम्हा भिक्खाचरिया विसुद्धिए ठंति ।
तम्हा भिक्खाचरियं सोहिय साहू सदा विहारिज्ज।।१००५।।

गाथार्थ – क्योंकि भिक्षाचर्या की विशुद्धि के होने पर व्रत, शील और गुण ठहरते हैं, इसलिए साधु भिक्षाचर्या का शोधन करके हमेशा विहार करे।

आचारवृत्ति – **आहारचर्या के निर्दोष होने पर ही व्रत, शील और गुण रहते हैं,** इसलिए मुनि सदैव आहारचर्या को शुद्ध करके विचरण करे। अर्थात् **आहार की शुद्धि ही प्रधान है, वही चारित्र है और सभी में सारभूत है।** (पृष्ठ १६४–१६५)

संयत (मुनि) को आते देखकर भोजन पकाना प्रारम्भ करना अध्यधि दोष है। (मूलाचार पूर्वार्ध – पृष्ठ २३१) इसलिए **साधु चौके में पधारने के बाद किसी भी प्रकार का आरंभ कार्य नहीं करना चाहिए।** यदि कुछ अपूर्णता लगती है अथवा कोई वस्तु कम पड़ती है तो अन्य वस्तुओं से काम चलाना चाहिए। परन्तु **फलों के टुकड़े आदि करना, सब्जी अथवा अन्य कोई नई वस्तु बनाना अथवा पहले**

बनाई हुई कोई वस्तु या दूध आदि गरम करना ऐसे अध:कर्म उस समय नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह अध:कर्म दोष – पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक व वनस्पतिकायिक तथा त्रसकायिक इन षट्कायिक जीवों की विराधना करके आहार उत्पन्न करना एषणा समिति के ४६ दोषों से भिन्न और सबसे बड़ा दोष कहा है।

आ. सिद्धान्तसागरद्वारा प्रकाशित **आहारदान** शास्त्र में भी लिखा है–उत्तम दाता साधक के आने से पहले ही अन्न तथा फल आदि बनाकर तैयार रखता है, उनके आने के उपरांत आरम्भ नहीं करता है। (पृष्ठ ६६) तथा खिड़की–दरवाजे खोलना–बंद करना, सब्जी–फल आदि बनाना, चूल्हा (गॅस अथवा किसी भी प्रकार की अग्नि) जलाना, इत्यादि क्रियाएँ अज्ञानता की द्योतक हैं। (पृष्ठ ६४)

आ. पुष्पदन्तसागरकृत **कौन कैसे किसे क्या दे?** में भी कहा है – **मुनिराज के आहारचर्या को निकलने के पूर्व ही श्रावक को समस्त सामग्री तैयार करके रख लेनी चाहिए ।** (पृष्ठ २३) **फल पहले से ही काटकर रखना चाहिए ।** (पृष्ठ २७) तथा **आहार के समय अग्नि आदि न जलायें ।** (पृष्ठ २८)

मूलाचार में कहा है – जो स्वयं अपने द्वारा बनाया गया है या पर से कराया गया हैं अथवा पर के द्वारा करने में अनुमोदना दी गयी है ऐसा जो भोजन बना हुआ है वह अध:कर्म कहलाता है ।... यदि कोई श्रमण इस दोष को करेगा तो वह गृहस्थ जैसा ही हो जायेगा । (पूर्वार्ध – पृष्ठ ३३३)

एक्को वा वि तयो वा सीहो वग्घो मयो व खादिज्जो ।
जदि खादेज्ज स णीचो जीवयरासिं णिहंतूण ।।९२२।।

आचारवृत्ति – कोई सिंह अथवा व्याघ्र या अन्य कोई हिंस्र प्राणी एक अथवा दो या तीन अथवा चार मृगों का भक्षण करते हैं तो वे हिंस्र पापी कहलाते हैं । तब फिर **जो अध:कर्म के द्वारा (अग्निकायिक आदि) तमाम जीवसमूह को नष्ट करके आहार लेते हैं वे नीच–अधम क्यों नहीं हैं? अर्थात् (वे) नीच ही हैं ।** (उत्तरार्ध – पृष्ठ १२५–१२६)

आसुप्रवर्तते योऽधी: कृतकारितानुमोदनै: ।
सुस्वादान्नायतास्याहो! वृथा दीक्षा दुरात्मन: ।।२५४३।।

अर्थात्– **जो मूर्ख मुनि स्वादिष्ट अन्न के लिये कृत–कारित–अनुमोदना से इन पंचपापों में (पंचसुनाओं में) अपनी प्रवृत्ति करते हैं, उन दुष्टों की दीक्षा लेना भी व्यर्थ समझना चाहिये।** (मूलाचार प्रदीप – पृष्ठ ३९०) ऐसे भाव एवं चारित्र से हीन साधु मध्यम अपात्र हैं । (अंकाख्यान श्रेयांस कोश–भाग ३ – पृष्ठ १०)

साधु आहार करने के लिए स्वयं अन्न नहीं बनाते हैं, औरों से कहकर अथवा इशारा करके भी नहीं बनवाते हैं तथा बनाने के लिए मन–वचन–कायसे अनुमोदना भी नहीं करते हैं। जिस अन्न आदि बनाने में उन्होंने अनुमोदना भी की है ऐसा आहार वे अनुमति त्याग–व्रतधारी साधु ग्रहण नहीं करते हैं। साधु तो क्या, **दसवी अनुमतित्याग प्रतिमा का धारी भी घर के आरम्भ, विवाह आदि में, अपने आहार–पान आदि में और धनोपार्जन में अनुमति देने का त्यागी होता है।** (वीर वर्धमान चरित–१८/६८) वह यह भी नहीं कहता कि मेरे लिए अमुक वस्तु बनाना, जो कुछ गृहस्थ जिमाता है, जीम आता है। (वसुनन्दि श्रावकाचार–३००, पृष्ठ २७७)

एषणा समिति नामक मूलगुण का पालन करनेके लिए उनके पहुँचने के बाद किसी प्रकार का आरंभ चाहे सामने हो, चाहे पीठ पीछे करके अथवा अन्य कमरे में जाकर किया जाता है तो साधु अन्तराय मानते हैं। इसलिए चौके में साधु पधारने से पहले ही वहाँ किसी भी प्रकारकी अग्नि–जलते कोयले, लकड़ी, चूल्हा, स्टोव्ह, गॅस, इलेक्ट्रीक सिगड़ी, आदि न हो इस बात का ध्यान रखना चाहिए। **यदि कोई साधु भी गरम बनाने के लिए प्रेरित करे तो भी आरम्भ नहीं करना चाहिए।** अपितु जैसा कि आ. विद्यानन्द ने कहा हैं – **''साधु की आहार संबंधी कोई गलत क्रिया देखते हैं तो श्रावक उसे बतावे कि 'आपकी चर्या में यह नहीं होना चाहिए' इस प्रकार उन्हें समझाए ।''** (गुरुवाणी भाग–४ – पृष्ठ ९०)

(साधूंची आहार संबंधी काही चुकीची क्रिया घडत असेल तर श्रावकाने त्यांना सचेत करावे, 'आपल्या चर्येमध्ये असे व्हायला नको आहे.' असे नम्रपणे सांगावे.) (आनंदधारा – पृष्ठ ९६ (गुरुवाणी भाग–४

का मराठी अनुवाद))

फिर भी यदि कोई साधु अपने लिए गरम पदार्थ बनाने के लिए अथवा फल काटने के लिए कहे अथवा अन्य लोग ''इनको चलता है तो आप क्यों नहीं बनाते हो ?'' ऐसा कहे तो भी उनका कहना अस्वीकार करना चाहिये क्योंकि **धर्मोद्योत प्रश्नोत्तरमाला** में कहा है –

स्वकीया: परकीया: वा मर्यादालोपिनो नरा: ।
न हि माननीयं तेषां तपो वा श्रुतमेव च ।।

अर्थात् **स्वजन हो अथवा परजन हो, तपस्वी हो या विद्वान् हो किन्तु यदि वह मर्यादाओं का – शास्त्राज्ञा का लोप करने वाला है तो उसका कहना नहीं मानना चाहिए** । (पृष्ठ ६६)

आहार के समय इशारे

प्रश्न – आहार देते समय कब कौनसा पदार्थ देना चाहिये यह बात दाता के समझ में नहीं आयें तो साधु किस प्रकार से उसे इशारा करे?

समाधान – आहार करने हेतु निकलने पर साधु याचना नहीं करने के लिए मौन लेते हैं। **मूलाचार** में कहा है –

ण वि ते अभित्थुणंति य पिंडत्थं ण वि य किंचि जायंति ।
मोणव्वदेण मुणिणो चरंति भिक्खं अभासंता ।। ८१९ ।।

गाथार्थ– भोजन के लिए किसी की स्तुति नहीं करते हैं और न कुछ भी याचना करते हैं। वे मुनि बिना बोले मौनव्रतपूर्वक भिक्षा ग्रहण करते हैं।

आचारवृत्ति– ग्रास के निमित्त वे मुनि श्लोक आदि के द्वारा किसी की स्तुति नहीं करते हैं, और आहार के लिए वे किंचित् भी द्रव्य आदि की याचना भी नहीं करते हैं। वे सन्तोष से मौनपूर्वक आहार के लिए पर्यटन करते हैं। किन्तु मौन में खखार, हुंकार आदि संकेत को भी नहीं करते हैं। इस कथन से यहाँ मौनपूर्वक और नहीं बोलना इन दो प्रकार के कथनों में पुनरुक्त दोष नहीं है। अर्थात् मौन व्रत से किसीसे वार्तालाप नहीं करना–कुछ नहीं बोलना– ऐसा अभिप्राय है और अभाषयन्त: से खखार, हुँ, हाँ, ताली बजाना आदि अव्यक्त शब्दों का संकेत वर्जित है, ऐसा समझना । (उत्तरार्ध पृष्ठ ६५)

अमितगति श्रावकाचार में कहा है –

हुंकारांगुलि–खात्कार–भ्रू–मूर्ध–चलनादिभि: ।
मौनं विदधता संज्ञा विधातव्या न गृद्धये ।।१२/१०७।।

अर्थात् – मौन लेकर भोजन करते समय गृद्धता से हुंकार, खखार करना, अंगुलि, आँख, भ्रूकुटि, अथवा मस्तक आदि हिला कर इशारा नहीं करना चाहिए ।

इसलिए मुनि आहार के समय अयाचक वृत्ति और आत्मसम्मान की रक्षा हेतु किसी भी प्रकार से इशारे नहीं करते । कौनसी वस्तु देना चाहिए यह दातार के समझ में नहीं आये तो भी वे ''लाभ से अलाभ श्रेष्ठ है'' ऐसा विचार करते हुए प्रसन्न रहते हैं ।

ठंडा पानी

प्रश्न – क्या साधु फ्रीज का ठंडा पानी पी सकते हैं ?

समाधान– केवल फ्रीज में ठंडा किया ही नहीं पहले गरम करके फिर किसी भी प्रकार से ठंडा किया पानी भी साधु नहीं पी सकते हैं । जिस जलका स्पर्श, रस, गंध अथवा वर्ण नहीं बदला हो, ऐसा जल पीनेवाले साधुका अपरिणत नामक दोष होता है। तद्यथा –

तिलोदकं तथा तंडुलोदकं चणकोदकम्।
तुषोदकं चिरान्नीर, तप्तं शीतत्वमागतम्।।४४८।।
विभीतक हरीतक्यादिकचूर्णैस्तथाविधम्।
स्वात्मीय रसवर्णादिभिश्चापरिणतं जलम्।।४४९।।
न ग्राह्यं संयतैर्जातु सदा ग्राह्याणि तानि च ।
परीक्ष्य चक्षुषा सर्वाण्यहो परिणतानि च।।४५०।।

अर्थ – तिलों के धोने का पानी, चावलों के धोने का पानी, चनों के धोने का पानी, चावलों की भूसी के धोने का पानी तथा **जो पानी बहुत देर पहले गरम किया हो और ठंडा हो गया हो** अथवा हरड़, बहेड़ा आदि के चूर्णसे अपने रस वर्णको बदल न सका हो ये सब प्रकार के जल संयमियों को कभी ग्रहण नहीं करने चाहिये। जिस जलका वर्ण या रस किसी चूर्ण आदि से बदल गया हो ऐसा जल आँखसे अच्छी तरह देखकर परीक्षा कर संयमियों को ग्रहण करना चाहिये। फिर किस तरह का जल

ग्राह्य है –

संतप्तं वा जलं ग्राह्यं, कृतादिदोष दूरगम्।
तथा परिणतं द्रव्यं, नानावर्णैर्मुमुक्षुभिः।।४५१।।

अर्थ – **अथवा मोक्षकी इच्छा करनेवाले संयमियोंको कृत, कारित, अनुमोदना आदिके दोषों से रहित गरम जल ग्रहण करना चाहिये** अथवा अनेक वर्णके द्रव्यों से (हरड़, इलायची आदि के चूर्ण से) जिसका स्पर्श, रस, गंध अथवा वर्ण बदल गया हो; ऐसा जल ग्रहण करना चाहिये।

योत्रापरिणतान्येव तानि गृह्णाति मूढधीः।
तस्यापरिणतो दोषो जायते सत्त्वघातकः।।४५२।।

अर्थ – जिस जलका रूप-रस आदि नहीं बदला है; किसी चूर्णके मिलाने पर भी रूप नहीं बदला है या गर्म करनेसे स्पर्श नहीं बदला है ऐसा जल जो अज्ञानी मुनि ग्रहण करता है उसके अनेक जीवोंकी हिंसा करनेवाला अपरिणत नामका दोष उत्पन्न होता है। (मूलाचार प्रदीप – पृष्ठ ६९-७०)

ठंडा पानी प्रथम तो केवल स्पर्शनेन्द्रिय के सुख के लिए होता है, दूसरे ठंडे पानी से प्यास भी जल्दी लगती है। परन्तु गरम पानी पीने से खाये हुए अन्न का पचन अच्छे प्रकार से होता है, जिससे दाँतों पर मल नहीं चढ़ता है। भोजन में मीठे अथवा दाँतों में चिपकने/फँसने वाले पदार्थ अन्त में नहीं लेकर पर्याप्त गरम पानी लेने पर दाँतों के रोग नहीं होते हैं।

जो साधु अदंतधावन मूलगुण का भंग कर दंतमंजन करना, नींबु आदि से दाँत घिसना, लौंग अथवा काड़ी आदि से दाँत साफ करना ऐसे दोष करते हैं, उसके मूल में प्रमाद के साथ-साथ आहार के क्रम विषयक अज्ञान – आहार करते समय मीठी वस्तुएँ पीछे से लेना, बर्फ तथा आईस्क्रीम जैसी अनिष्ट-अभक्ष्य वस्तुएँ खाना आदि और ठंडा पानी लेना ये भी कारण हैं।

अतएव साधुओं को गरम पानी पीना ही योग्य है क्योंकि वह सुलभता से प्राप्त हो सकता है। अन्य प्रकारसे परिणत जल कोई विशिष्ट ज्ञानी ही दे सकते हैं। पुनः उष्ण जल चारित्र के पालन में सहायक भी होता है।

दंत मंजन

प्रश्न – आहार करने के उपरान्त मुनि मंजन अथवा काड़ी आदि से दाँत साफ कर सकते हैं या नहीं ?

समाधान – मुनियों के २८ मूलगुणों में एक अदंतधावन मूलगुण है।

छहढाला में कहा भी है –

जिनके न न्हौन न दंतधावन, लेश अंबर आवरण ।६/५।

अदंतधावन का अर्थ है – किसी भी बाहरी वस्तुसे दाँतों को साफ करने का प्रयत्न नहीं करना। अतः मुनि किसी भी प्रकार के मंजन, नींबु, दाँतून, काड़ी आदि का उपयोग करके अपने दाँत साफ नहीं कर सकते।

मूलाचार (पूर्वार्ध) में अदंतधावन मूलगुण का स्वरूप कहा है –

अंगुलिणहावलेहणिकलीहिं पासाणछल्लियादीहिं ।
दंतमलासोहणयं संजमगुत्ती अदंतमणं ।।३३।।

गाथार्थ – **अंगुली, नख, दांतोन और तृण विशेष के द्वारा, पत्थर या छाल आदि के द्वारा दाँत के मल का शोधन नहीं करना यह संयम की रक्षारूप अदन्तधावन व्रत हैं ।**

आचारवृत्ति – अंगुली-हाथ के अग्रभाग का अवयव, नख, अवलेखनी-जिसके द्वारा मल निकाला जाता हैं वह दांतोन आदि, कलि-तृण विशेष, पत्थर और वृक्षों की छाल। यहाँ आदि शब्द से खप्पर के टुकड़े, चावल की बत्ती आदि ग्रहण की जाती हैं। इन सभी के द्वारा दाँतों का मल नहीं निकालना यह इन्द्रियसंयम की रक्षा के निमित्त अदंतधावन व्रत है। (पृष्ठ ४१)

तथा **मूलाचार प्रदीप** में भी कहा है –

स्वनखांगुलिपाषाणलेखिनीखर्परादिभिः।
तृणत्वजादिकैर्यश्च दंतानां मलसंचयः।।१३२५।।
न निराक्रियते जातु वैराग्याय मुनीश्वरैः।
अदंतवनमेवात्र तद्रागादिनिवारकम्।।१३२६।।

अर्थ – मुनिराज अपना वैराग्य बढाने के लिये अपने नखों से, उंगली से,

पत्थर से, कलम से, खप्पर से, तृण से वा (लौंग, माचिस की तीली अथवा नींबु आदि की) छाल से दाँतों में इकट्ठे हुए मल को कभी दूर नहीं करते हैं उसको रागादिकको दूर करनेवाला अदंतधावन नामका मूलगुण कहते हैं। (पृष्ठ २१३)

इस अदंतधावन का महत्त्व जानकर आ. पुष्पदन्तसागर कहते हैं – **दाँतों को स्वच्छ बनाने के लिए मुनि स्वप्न में भी दाँतून या मंजन का उपयोग नहीं करते ।** (कौन कैसे किसे क्या दे? – पृष्ठ ३५) दंतमंजन चाहे आहार से पहले करे अथवा बाद में करे, दोनों में भी दोष ही हैं क्योंकि शास्त्रों में अदंतधावन मूलगुण के वर्णन में आहार से पहले दाँत नहीं माँजना ऐसा उल्लेख नहीं होकर मात्र दाँतों का मल नहीं निकालना ऐसा सामान्य उल्लेख है।

इससे स्पष्ट होता है कि **मुनि–आर्यिका आहार से पहले अथवा आहार के बाद कभी भी दाँत माँजने अथवा दाँतों से मल–अन्नकण निकालने का महादोष नहीं करते हैं।**

प्रसाद

प्रश्न – क्या साधु आहार करते–करते अपने हाथमें का ग्रास या कोई पदार्थ अपने भक्तों को प्रसाद के रूप में दे सकते हैं?

समाधान – साधु अपने उदरपूरण के लिये अपने हाथ में अन्न लेते हैं, औरों को बाँटने के लिए नहीं । यदि कोई साधु हाथ में लिया हुवा किसी भी प्रकार का अन्न प्रसाद के रूप में किसी अन्य व्यक्ति को देता है तो उसकी यह अनधिकार चेष्टा मर्यादाभंग है। **योगसार प्राभृत** में कहा भी है –

पिण्डः पाणिगतोऽन्यस्मै दातुं योग्यो न युज्यते ।
दीयते चेन्न भोक्तव्यं, भुंक्ते चेद् दोषभाग् यतिः ।।८/६४।।

अर्थात् – साधुके हाथमें पड़ा हुवा आहार दूसरेको देनेके योग्य नहीं होता (इसलिये किसीको नहीं दिया जाता), यदि दिया जाता है तो उस साधुको फिर आगे आहार नहीं करना चाहिये। (उसे अन्तराय करना चाहिये) यदि वह **साधु अपने हाथका ग्रास (प्रसाद के रूपमें) दूसरेको देकर आगे और आहार करता है तो वह दोषका भागी होता है ।** (पृष्ठ १८३)

प्रवचनसार में भी कहा है–

अप्पडिकुट्ठं पिण्डं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स ।
दत्ता भोत्तुमजोग्गं भुत्तो वा होदि पडिकुट्ठो ।।३/३०*२०।।

अर्थात् – जो आहार आगमसे विरुद्ध नहीं है अर्थात् निर्दोष है वह हाथमें आनेपर उसे दूसरेको नहीं देना चाहिये। यदि (प्रसाद के रूपमें भी) देता है तो फिर वह स्वयं भोजन करनेके लिये अयोग्य हो जाता है। यदि कदाचित् फिर भी आगे भोजन करता है तो वह प्रायश्चित्त के योग्य होता है। इसलिए **साधु अपने हाथ में से कोई पदार्थ प्रसाद के रूप में नहीं दे सकते ।**

द्रव्य के स्वामी नहीं होने से साधु अन्य दाताओं के द्वारा भी प्रसाद बँटवाने का काम नहीं करते । तथा संयमी और असंयमी दोनों को एक साथ अन्न देने से संयमी का अविनय होता है। **मूलाचार** में इसे मिश्र दोष कहा है –

पासंडेहि य सद्धं सागारेहिं य जदण्णमुद्दिसियं ।
दादुमिदि संजदाणं सिद्धं मिस्सं वियाणाहि ।।४२९।।

अर्थात् – पाखण्डियों और गृहस्थों के साथ मुनियों को जो सिद्ध हुआ अन्न दिया जाता है उसे मिश्र दोष जानो । (पूवार्ध पृष्ठ ३३७)

आहार ... कितनी बार ?

प्रश्न – अन्तराय आने पर अथवा आहार की विधि नहीं मिलने से मंदिर में आकर मुद्रिका छोड़ने पर कुछ समय बाद अथवा दोपहर सामायिक के बाद क्या वह साधु पुनः आहार के लिए निकल सकता है ?

समाधान – साधुओं के एकभक्त मूलगुण का अर्थ है एक दिन में एक बार ही आहार करना। शास्त्र की ऐसी आज्ञा है कि साधु चर्या के लिए प्रभात में **अथवा** अपराह्ण काल में निकले। यहाँ 'अथवा' के स्थान में अपने अंतःकरण को ही आगम और परम्पराका प्रतीक मान कोई–कोई लोग 'और' शब्द रखकर प्रभात में और अपराह्ण में निकलना उचित मानते

थे। ऐसे लोगों को (आ. शान्तिसागर) महाराज ने बताया था –

''आहार के लिए संकल्प करके दो बार निकलने से एक आहार की प्रतिज्ञा दूषित होती है, इसलिये सबेरे या दोपहर के बाद ''एक ही बार'' चर्या (आहार) को निकलना धर्म का मार्ग है।'' (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ८१)

मूलाचार (टीका) में भी कहा है –

कदाचित् प्रसंगवश यदि (आहार के लिए) **प्रातः नहीं निकले हैं तो** मध्याह्न सामायिक के उपरान्त सूर्यास्त से तीन घटिका पहले तक भी निकलते हैं। (पूवार्ध पृष्ठ २६७)

इससे स्पष्ट होता है कि कोई भी **साधु एक दिन में दूसरी बार आहार के लिये नहीं निकल सकते।**

आहार के बदले में ...

प्रश्न – साधु के आहार के बदले में यदि श्रावक क्षेत्रविकास के लिए कुछ धन दान के रूप में दे रहा हो तो इस प्रकार उसके यहाँ आहार करना उचित है या नहीं ?

समाधान – जिन्होंने समस्त पर्व–महोत्सव का त्याग कर दिया हैं, जिनके आने की कोई तिथि नहीं होती है, आने के पहले जो सूचना नहीं देते हैं उन्हें अतिथि कहते हैं । (प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ १७४) **जैन मुनि दाता के घर निमंत्रण पर भी नहीं जाते हैं और न ही उसको बताते हैं कि मैं किस घर में जाऊँ गा या कैसा भोजन करूँगा?** (संत साधना – पृष्ठ १७) इसलिये जैन साधु अतिथि होते हैं । अतः साधु किस दिन किसके यहाँ जायेंगे यह कभी भी निश्चित नहीं किया जा सकता।

अष्टपाहुड में कहा है–

उत्तम मज्झिम गेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खे ।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ।। बोधपाहुड ४८।।

अर्थात्– साधु ऐसा विकल्प नहीं करता है कि मैं भिक्षा के लिए उच्चगृह (धनवान के घर) में जाता हूं और नीचगृह (धनहीन के घर) में प्रवेश नहीं करता हूँ। **दीक्षा दारिद्र्य और धनसंपन्नता के विषय में निरपेक्ष रहती है** अर्थात् कभी ऐसा अभिप्राय नहीं रखती है कि मैं भिक्षा के लिए दरिद्र–निर्धन के घर में प्रवेश नहीं करूँऔर ईश्वर–धनाढ्य के घर में प्रवेश करूँ। जो समस्त योग्य गृहों में आहार करती है वह प्रव्रज्या–दीक्षा है। (पृष्ठ २१३–२१४) क्योंकि –

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा ।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया।।बोधपाहुड ५०।।

विशेषार्थ – जिनदीक्षा निर्लोभ – लोभ रहित होती है अर्थात् हे मुनिराज! हे तपस्विन्! मैं तुम्हारे लिये यह (धन) वस्त्रादिक दूँगा आप हमारे घर पर भिक्षा ग्रहण किजिये, इस प्रकार के लोभ से रहित है। (पृष्ठ २२१)

मूलाचार में कहा है कि **यदि आज मेरे घर मुनि आहार को आयेंगे तो मैं** यक्ष को अमुक नैवेद्य चढ़ाऊँगा **(इतने रुपये दान दूँगा) आदि रूप से संकल्प करना बलिकर्म है।** ऐसा करके आहार देने से भी बलि नाम का दोष होता है। (पूर्वार्ध पृष्ठ ३३८)

इस प्रकार से दान के लिए निश्चित जगह पर आहार करनेवाले मुनि के लिए **अष्टपाहुड** में कहा है –

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला ।
आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।मोक्षपाहुड७९।।

विशेषार्थ– जो मुनि (फोटो/पुस्तके छपवाना, आनन्दयात्रा–प्रश्नमंच अथवा प्रतियोगिताओं में इनाम बँटवाना, आहार–विहार, क्षेत्रविकास आदि) किसी काज से धन स्वीकृत करते हैं, याचना करना जिनका स्वभाव पड़ गया है और जो अधःकर्म में–निन्द्यकर्म में रत हैं वे मुनि मोक्षमार्ग से पतित हैं। **जो मुनि जिनमुद्राको दिखाकर धन की याचना करते हैं वे माता को दिखा कर भाड़ा ग्रहण करनेवालों के समान हैं।** (पृष्ठ ६५४–६५५)

ऐसे मुनि की निर्भत्सना करते हुए **ज्ञानार्णव** में कहा है –

यतित्वं जीवनोपायं कुर्वन्त किं न लज्जितः ।
मातु पण्यमिवालम्ब्य यथा केचिद्गतघृणाः ।।४/५६।।
निस्त्रपाः कर्म कुर्वन्ति यतित्वेऽप्यतिनिन्दितम् ।

ततो विराध्य सन्मार्ग विशन्ति नरकोदरे ।।४/५७।।

अर्थात् – जैसे कोई अपनी माताको वेश्या बनाकर उससे धनोपार्जन करते हैं, वैसे ही **जो मुनि होकर उस मुनिदीक्षाको जीवनका उपाय बनाते हैं और उसके द्वारा धनोपार्जन करते हैं वे अतिशय निर्दय तथा निर्लज्ज हैं ।** जो निर्लज्ज लोग साधुपनमें भी अतिशय निन्दायोग्य कार्य करते हैं वे समीचीन मार्गकी विराधना करके नरकमें प्रवेश करते हैं।

मुनि पुलकसागर के अनुसार भी ''दुनिया का सबसे बड़ा पाप महावीर की नजरों में, धन का संग्रह करना है ।'' (ऐसे भी जिया जाता है – पृष्ठ ४७)

अत: आ. सुविधिसागर उपदेश देते हैं– **हे मुने ! दुर्लभ से दुर्लभ चारित्ररत्न की प्राप्ति तुम्हें हुई है। उसको प्राप्त करके अर्थलाभ के लोभ में उसे व्यर्थ मत करो।** (सज्जनचित्तवल्लभ – पृष्ठ ४१)

पुन: दान तो प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित होता है। **'इस धन के बदले में अमुक साधु का मेरे यहाँ आहार हो यह तो दान नहीं सौदा ही है।' तथा साधु को भी चाहिए की वह धनी और निर्धन आदि के घरों का विचार–भेदभाव न करे ।** (मूलाचार (पूर्वार्ध)–पृष्ठ २६६)

अत: साधु संतनिवास निर्माण, क्षेत्रविकास आदि कार्यों के लिए भी विशिष्ट व्यक्ति के यहाँ आहार नहीं कर सकते।

इस विषय में आचार्य शान्तिसागर महाराज का जीवन स्मरणीय है। उन्होंने कहा, ''हमने आगम के विपरीत आचरण नहीं किया। .... मुनिपद की बात तो दूसरी, क्षुल्लक व्रत लेने पर हमने उपाध्याय (पंचायत/आहार समिति) द्वारा पूर्वनिश्चित घर में आहार नहीं किया।'' (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ३४६) क्योंकि जैन साधु किसी भी व्यक्ति का निमन्त्रण या भोजन पहले से नियत करके ग्रहण नहीं करते । (दिगम्बर मुनि – पृष्ठ २१) (मुनि–आर्यिका तो दूर,) ऐलक, क्षुल्लक ये (भी) निमंत्रण देने पर श्रावक के घर आहार हेतु नहीं जाते हैं । (कौन कैसे किसे क्या दे ? – पृष्ठ ३६) ???

क्षुल्लक जीवन में परम्परा वश अपार विघ्न

महाराज बचपन से ही महान् स्वाध्यायशील व्यक्ति थे। वे सर्वदा शास्त्रों का चिंतन किया करते थे। विशेष स्मृति के धनी होने के कारण पूर्वापर विचार कर वे शास्त्र के मर्म को बिना सहायक के स्वयं समझ जाते थे। इसलिए उन्हें प्रचलित सदाचार की प्रवृत्ति में पायी जाने वाली त्रुटियों का धीरे–धीरे शास्त्रों के प्रकाश में परिज्ञान होता था।

एक दिन महाराज ने कहा था – ''हमने सोचा कि उपाध्याय के द्वारा पूर्व में निश्चय किये घर में जाकर भोजन करना योग्य नही है, इसलिये हमने वैसा आहार नहीं लिया, इससे हमारे मार्ग में अपरिमित कष्ट आये। लोगों को इस बात का पता नहीं था कि **बिना पूर्व निश्चय के त्यागी लोग आहार के लिये निकलते हैं**, इसलिये दातार गृहस्थ को अपने यहाँ (अपने घर के सामने) आहार दान के लिये पड़गाहना चाहिये ।''

उस समय की प्रणाली के अनुसार ही लोग आहार की व्यवस्था किया करते थे। यह बात महाराज को आगम के विपरीत दिखी। अतएव उन्होंने किसी का भी ध्यान न कर उसी घर में आहार लेने की प्रतिज्ञा की, जहाँ शास्त्रानुसार आहार प्राप्त होगा।

उस समय के मुनि लोग भी कहने लगे कि ऐसा करने से काम नहीं होगा। ये पंचम काल है। इसे देखकर ही आचरण करना चाहिए।

ऐसी बात सुनकर आगम भक्त महाराज कहा करते थे, ''यदि शास्त्रानुसार जीवन नहीं बनेगा, तो हम उपवास करते हुए समाधिमरण को ग्रहण करेंगे, किन्तु आगम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे।''

उस समय की परिस्थिति ऐसी ही बिकट थी, जैसी कि हम पुराणों में, आदिनाथ भगवान के समय में विद्यमान पढते हैं। **जहाँ श्रावकों को अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है, जानकार उपाध्याय लालच वश विघ्नकारी बन रहे हैं तथा बड़े–बड़े मुनि कालदोष के नाम पर शास्त्र की आज्ञा को भुला रहे हैं, वहाँ हमारा भविष्य का जीवन कैसे चलेगा, इस बात की महाराज को तनिक भी चिन्ता नहीं**

थी। उन्हें एक मात्र चिन्ता थी तो जिनवाणी के अनुसार प्रवृत्ति करने की। (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ७८)

इस कठिन परिस्थिति में भी उन्होंने आगम–कथित मार्ग नहीं छोड़ा । परन्तु खेद है कि **आज विषयलोलुपी और मतलबी लोग धर्ममार्ग को छोड़कर पतनकारी क्रियाओं में प्रवृत्ति को सुधार का कार्य कहते हैं ।**

ऐसे समय श्रावकों का कर्तव्य है कि सर्वज्ञ, वीतराग तीर्थंकर द्वारा प्रकाशित पथपर प्रवृत्ति करें । **कुछ क्षण पर्यन्त पूर्व पुण्योदय वश हीन प्रवृत्ति वालों की उन्नति भी दिखे, किन्तु उसे क्षणिक जानकर मार्ग से भ्रष्ट नहीं होना चाहिए । हीन प्रवृत्ति सदा हीन ही रहेगी।**

इसलिए आ. अमितगति प्रार्थना करते हैं –

स्वतो मनोवचनशरीरनिर्मितं समाशया: कटुकरसादिकेषु ये ।
न भुञ्जते परमसुखैषिणोशनं मुनीश्वरा: मम गुरवो भवन्तु ते ।।
(सुभाषित रत्नसंदोह–२७/१२)

अर्थ : उत्कृष्ट सुख (मोक्षसुख) की अभिलाषा से कटुक व मधुर आदि रसोंमें समान अभिप्राय रखनेवाले (राग–द्वेषसे रहित) जो मुनीन्द्र अपने मन, वचन, कायसे तैयार किये गये भोजन को ग्रहण नहीं करते हैं, वे एषणासमितिके धारी मुनीन्द्र मेरे गुरु होवे । (पृष्ठ १८५)

* * * * *

शंखेन्दू सितपुष्पदन्तकलिकां यस्यास्ति दिव्यप्रभां
देवेन्द्रैरपि पूजिताक्षय सुखी दोषैर्विमुक्तात्मक: ।
दिव्यानन्तचतुष्टयै: सुरमया स्वर्मोक्षसन्दायक:
सोऽस्मान् पातु निरञ्जनो जिनपति: श्री पुष्पदन्तो जिन: ।।

६. प्रकीर्णक

अस्नान और तेलमालिश

प्रश्न – मुनि स्नान क्यों नहीं करते?

समाधान – मूलाचार प्रदीप में कहा है –

स्नानोद्वर्तन सेकादीन् मुखप्रक्षालनादिकान् ।
संस्कारान् सकलान् त्यक्त्वा स्वेद जल्ल मलादिभि:।।१२९९।।
लिप्तांगं धार्यते यच्च स्वान्त: शुद्ध्यैर्विशुद्धये।
तदस्नान व्रतं प्रोक्तं जिनैरन्तर्मलापहम् ।। १३०० ।।

अर्थात् – मुनि अंत:करण की शुद्धि से आत्मा की शुद्धता प्राप्त करने के लिए स्नान, उबटन, जलसिंचन और मुख, हाथ, पाँव आदि धोना आदि समस्त शरीर संस्कारों का त्याग करते हैं तथा पसीना, धूलि आदि मलों से लिप्त हुए शरीर को धारण करते हैं उसको जिनेन्द्रदेव ने अस्नान व्रत कहा है । (पृष्ठ २०८–२०९)

आचारसार में कहा है –

प्राणाघातविभीतितस्तनुरतित्यागाच्च भोगास्पृह: ।
स्नानोद्वर्त्तनलेपनादिविगमात्प्रस्वेदपांसूदितम्।।७/६।।

अर्थात् – स्नान करनेसे अनेक प्राणियोंका घात होता है इसी डरसे जो कभी स्नान नही करते, शरीरपर पसीना आनेपर जो धूलि जम जाती है उसको नहीं धोते, उसको लगी रहने देते हैं, इसी प्रकार वे मुनिराज अपने शरीरसे ममत्वका सर्वथा त्याग कर देते हैं। इसके सिवाय स्नान करना, उबटन लगाना, चंदनादिकका लेप करना आदि सब का त्याग कर देते हैं इसलिए भी वे अपने शरीरपर जमे हुए पसीना, धूलि आदिको नहीं हटाते हैं। (पृष्ठ १८२)

अनगार धर्मामृत में कहा है – शरीरपर न कोई वस्त्र हो न आभूषण, न उसका संस्कार–स्नान, तेल मर्दन आदि किया गया हो, जन्मके समय जैसी स्थिति होती है वही नग्न रूप हो, मल लगा हो, किसी अंगमें कोई विकार न हो, सर्वत्र सावधानतापूर्वक प्रवृत्ति हो, जिसे देखनेसे

ऐसा प्रतीत हो, मानो मूर्तिमान प्रशमगुण है। इसे ही कायशुद्धि कहते हैं। (पृष्ठ ४४८)

आत्मानुशासन में कहा है – येषां भूषणमंगसंगतरजः ...।।२५९।।

अर्थात् – मुनियों के लिए शरीर पर लगी हुई धूलि भूषण होती है।

भगवती आराधना में कहा है – मुनि स्नान तेलमर्दन, उबटन और नख, केश, दाढ़ी–मूछोंका संस्कार छोड़ देते हैं । दाँत, ओष्ठ, कान, मुख, नाक, भौं आदिका संस्कार छोड़ देते हैं ।।९२।। (पृष्ठ १२६)

इसका कारण यह है कि **पानी से शरीर स्वच्छ नहीं करके घी–तेल आदि पदार्थों के प्रयोग से भी शरीर पर लगा मल दूर करना भी अस्नान मूलगुण का भंग ही है** क्योंकि मुनि को पहचानने के जो चार बाहरी लक्षण है उनमें एक लक्षण शरीरसंस्कारहीनता है ।

इसी लिए **मरण कण्डिका** में कहा है –

शरीरमें तेल की मालिश करना अभ्यंग स्नान है। पापवर्धक ऐसे कोई संस्कार साधु नहीं करता। (पृष्ठ ३८)

जिस साधक के अन्दर वैराग्य के अंकुर फूटने लगते हैं वही जान सकता है कि शरीर को कितना भी धोया, घिसा तो भी इसकी पवित्रता नहीं हो सकती है । फिर क्यों इससे प्रेम करना ? (प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ १८२)

कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है– जो मुनि शरीर के पोषणमें ही लगा रहता है– तरह–तरहके स्वादिष्ट और पौष्टिक व्यंजनोंका भक्षण करता है, उपकरणोंमें विशेष रूपसे आसक्त रहता है तथा प्रतिष्ठा, विधान, मान–सन्मान आदि बाह्य व्यवहारोंमें ही रत रहता है उसके कायोत्सर्ग तप कैसे हो सकता है ? (४६९, पृष्ठ ३५५)

मूलाचार (टीका) में कहा है – चारित्र के कारणों का अनुमनन करना वैयावृत्त्य है। (पूर्वार्ध पृष्ठ ४७) अथवा आहारदानादि चार प्रकार का दान करना वैयावृत्ति है । (रत्नकरण्ड श्रावकाचार–१११–११७)

परन्तु अनेक अज्ञानी लोक साधुओं को ज्वर आदि कोई व्याधि अथवा विशेष श्रम आदि नहीं होने पर भी घी–तेल आदि से अनावश्यक मालिश करने को ही वैयावृत्ति समझते हैं। वास्तविक देखा जाये तो वह वैयावृत्ति नहीं अपितु अस्नान मूलगुण का भंग करना है। **वैयावृत्ति तो**

नित्य आहारदान करने से होती है ।

प्रश्न – आहार आदि समय मुनि शरीर के कौनसे अंग धोते हैं?

समाधान – आहार के लिये गमन करने से पूर्व मुनि घुटनों तक पैर, कुहनी तक हाथ, मस्तक तथा मुख इतने ही अंगों की शुद्धि करते हैं। शेष अंगों को धोने से अस्नान मूलगुण का भंग होता है।

केशलोच और उपवास

प्रश्न – क्या केशलोच के दिन उपवास करना अनिवार्य है ?

समाधान – आचारसार में कहा है –

कूर्चश्मश्रुकचोलुञ्चो लुचनं... ।।१/४२।। (पृष्ठ १७)

अर्थात् – दाढ़ी–मूँछ और मस्तक के केशों को उपाटना केशलोच है । केशलोच अपने अथवा दूसरों के हाथ से किया जाता है । (मूलाचार उत्तरार्ध – पृष्ठ ११८) उसमें मस्तक और दाढ़ी–मूँछ के यथासंभव सभी केश हाथों से ही उपाटते हैं । फ्रेंच कट आदि विशिष्ट स्टाईल के लिए भी कुछ केश छोड़े नहीं जाते अथवा अगले केशलोच से पहले किसी दिन निकाले नहीं जाते । मूलाचार गाथा २९ में 'उववासेणेव कायव्वो' कहा है जिससे **केशलोच उपवास करके ही करना चाहिए ऐसा स्पष्ट अवधारण होता है ।** (पूर्वार्ध पृष्ठ ३६)

एक दिन में भोजन की दो बेलाएँ होती है सुबह और दोपहर । किसी दिन आहार करने के बाद उस दिन के दोपहर की एक बेला, और दूसरे दिन की दोनों बेलाएँ ऐसी तीन बेलाओं को छोड़कर तीसरे दिन चौथी बेला में आहार ग्रहण करना उपवास अथवा चतुर्थभक्त कहा जाता है।

परन्तु २४ घंटे आहार नहीं करना ही उपवास है ऐसा मनमाना अर्थ करके सुबह आहार करके दोपहर केशलोच करना आगमविरुद्ध है । क्योंकि साधुओं का उपवास प्रायः १६ पहर अर्थात् ४८ घंटे का होता है जैसा कि **धवला पुस्तक १३** में कहा है – उस (इच्छानिरोधरूप तप) में चौथे, छठे, आठवें, दसवें, बारहवें एषण (अन्न, पान,खाद्य और स्वाद्य रूप चार प्रकार के आहार) का ग्रहण करना अनेषण–उपवास नामक तप है । (पृष्ठ ५५)

मात्र २४ घंटे आहार नहीं करने को उपवास मानने से तो साधुओं का प्रतिदिन ही उपवास मानना होगा । परन्तु ऐसा नहीं है। अत: जिस दिन केशलोच करते है उस दिन सुबह अथवा दोपहर किसी भी समय साधु आहार ग्रहण नहीं कर सकते ।

परिवार और संस्था

प्रश्न – क्या साधु अपने परिवारजनों का निर्वाह अथवा अपने गाँव का विकास करने के लिये संस्था आदि स्थापन कर सकते हैं ?

समाधान – गृहत्याग का अर्थ मात्र घर में नहीं रहना इतना सीमित नहीं है। गृहत्याग का अर्थ घर तथा घरवालों के प्रति मोह का त्याग करना है। इतने बड़े–बड़े तीर्थंकर–चक्रवर्ती अपना सारा धन, वैभव, कुटुम्ब–परिवार छोड़ कर मुनि बने, फिर पुनः उस ओर नहीं देखा, कभी घर का समाचार नहीं पूछा। क्योंकि दिगम्बर मुनि अपने अतीत से कोई सम्बध नहीं रखते । (प्रश्न आज के – पृष्ठ १४)

यह मेरा बैरी था, मित्र था, पिताजी थे, मेरे भाई थे या और कोई अन्य संबंधी; अब कोई संबंध नहीं – सब छूट गया । इस नग्नावस्था (मुनिपद) के साथ तो मात्र पूज्य–पूजक संबंध रह गया है । इसके उपरान्त भी यदि अतीत की ओर दृष्टि चली जाती है, राग–द्वेष हो जाते हैं, परिचर्या में नहीं लगता है तो उसे मिथ्यादृष्टि कहा है । (प्रवचन–प्रमेय – पृष्ठ ७२)

जो साधु स्वाध्याय–तप–चारित्र में आलसी और प्रसिद्धि पाने में तथा धन आदि इकट्ठा करने में तत्पर रहकर लोकरंजना करता है वह स्वयं रत्नत्रय में उदासीन होने से गृहस्थों का कैसे कल्याण कर सकता है ? नहीं कर सकता।

मरण कण्डिका में कहा भी हैं –

विध्यापयति यो वेश्म, नात्मीयमालसत्वतः ।
पर–वेश्म–शमे तत्र, प्रतीतिः क्रियते कथम् ।।२९२।।

अर्थात्– जो आलस्यवश जलते हुए अपने घरको भी नहीं बचाता है, उस पर कैसे विश्वास किया जा सकता है कि वह दूसरों के जलते हुए घरको बचायेगा। (पृष्ठ १०८)

पुनश्च **भगवती आराधना** में भी कहा है –

कुलगाम णयररज्जं पयहिय तेसु कुणई ममत्तिं जो ।
सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो ।।२९५।।

अर्थात् – **जो कुल, ग्राम, नगर और राज्य को छोड़कर भी उससे ममत्व करता है कि मेरा कुल है, गाँव है या नगर है, राज्य है वह भी केवल नग्न है। जो जिससे ममता करता है उसका यदि अच्छा होता है तो उसे सन्तोष होता है अन्यथा द्वेष अथवा संक्लेश करता है। इस तरह राग–द्वेष करने पर असंयतों में आदरवान होने से वह कैसे संयमी हो सकता है? (वह असंयमी ही है।)** (पृष्ठ २७३)

इससे स्पष्ट होता है कि साधु बनने के बाद उसका कोई घर नहीं, परिवारजन नहीं तथा कोई गाँव वा गाँववाले नहीं। साधु का परिवार केवल सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र–तप यह है। उसे इसमें ही अनुराग रखना चाहिये, असंयमी गृहस्थों में नहीं।

इसलिए आ. देवनन्दि ने कहा था –

साधु जीवन में क्या झोपड़ी, क्या मठ, क्या आश्रम और क्या संस्था ? क्या आवश्यकता है साधु को इसकी ? यह सब तो परिग्रह की लालसायें हैं । (प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ २९१) गुरुओंमें कोई विषयवासना और परिग्रह नहीं होता है। **गुरुओं के कोई भी मठ अथवा संस्थाएँ भी नहीं होती हैं।** (देव भाष्य – पृष्ठ २०)

धर्म के असली दुश्मन

दिगंबर मुनि का वेष सब परिग्रहसे रहित होता है । (मोक्षपाहुड –९१) इसलिए आचार्य महावीरकीर्ति महाराज कहते थे –

गुरु वही सच्चा है जो वीतरागता के पथ पर चलकर पूर्ण वीतरागता को ही धर्म मानता है । (प्रवचनामृत–संग्रह – पृष्ठ ४)

किन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन साधु पुरुषों की प्रतिष्ठा–इज्जत देखकर, इनको दुनियाँ के लोगों द्वारा पूजते हुये देखकर अन्तरंग में साधुता न होते हुये भी पूज्यता के प्रलोभन में आकर भी साधु हो जाते हैं । (मानव धर्म – पृष्ठ ३८)

क्रान्तिकारी सन्त तरुणसागर का कहना सत्य ही है कि **वे लोग जो धर्म (और मुनिवेष) के आड़ में अपना उल्लू सीधा करते हैं, धर्म के असली दुश्मन हैं** । (कड़वे प्रवचन भाग १ – पृष्ठ ४१)

व्यापार में सलाह

प्रश्न – क्या मुनिराज व्यापारिक सलाह भी नहीं दे सकते ?

समाधान – भगवती आराधना (टीका) में कहा है – जिस वचन में असि, मसि, कृषि, सेवा, वाणिज्य आदि षट्कर्मोंका उपदेश न हो (मुनियोंको) वह वचन बोलना चाहिये । (१२६, पृष्ठ १६८) अर्थात् उनको व्यापार आदि का उपदेश नहीं देना चाहिये । **क्योंकि – खेती, आरम्भ आदि वचन कहने केलिए तथा धन कमाने केलिए जो अज्ञानी जीव दूसरे लोगों को उपदेश दिया करते हैं वह पापोपदेश नाम का पहला अनर्थदण्ड है । (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार–१७/२८–३१)**

मूलाचार में कहा है–

सव्वारंभणियत्ता जुत्ता जिणदेसिदम्मि धम्मम्मि ।
ण य इच्छंति ममत्तिं परिग्गहे बालमित्तम्मि ।।७८४।।

आचारवृत्ति – वे मुनि असि, मषि, कृषि, वाणिज्य आदि व्यापार से रहित हो चुके हैं, जिनेन्द्रदेव कथित धर्म में उद्युक्त है तथा श्रामण्य के अयोग्य बाल मात्र भी परिग्रह के विषय में ममता नहीं करते हैं, क्योंकि वे सर्व ग्रन्थ से विमुक्त हैं। (उत्तरार्ध – पृष्ठ ४८)

संसार के प्रपंचों में साधुओं का सहभाग शोभा नहीं देता । जो कार्य जिसके योग्य है वह कार्य उसे (ही) करने देना चाहिए । कोई भी कार्य अपने पदानुसार ही शोभा देता है । इसलिए सर्व सावद्य के त्यागी निर्ग्रन्थ मुनियों से गृहस्थों के योग्य सांसारिक प्रपंचों की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए ।

क्षेत्रविकास और समाजसेवा

प्रश्न – जगत् से संबंध तोड़ कर केवल स्वाध्याय, ध्यान और तप में लीन रहनेकी जैन मुनियों की वृत्ति स्वार्थी प्रतीत होती है। बदलते हुए जमाने को देखकर मुनियों को अपने मूलगुणों में और चर्या में परिवर्तन करके राजनीतिक मसले सुलझाने में तथा क्षेत्रविकास, संतनिवास तथा ग्रामविकास,

स्कूल–कॉलेज चलाना आदि कार्यों में भूमिका क्यों नहीं निभानी चाहिए ?

समाधान – ध्यान और अध्ययन यह साधु का कार्य है । अन्य लौकिक बाते करना उसका कार्य नहीं है । मन्दिर बनाना, पंचकल्याणक कराना, रथ चलाना यह सब श्रावकों का कार्य है, साधुओं का नहीं । (स्वानंद विद्यामृत – पृष्ठ ४१ (हिन्दी अनुवाद))

भगवान महावीर स्वामी का स्वरूप धर्मशालादि बनवाना नहीं था । भगवान महावीर स्वामी का स्वरूप तो परम वीतराग–दशा, निस्पृह–वृत्ति–रूप था । जिन्हें स्वयं के पिता के गणराज्यपर भी मोह नहीं आया, उन्हें क्षेत्रों, भक्तों और नगरों के राग से भला कैसे विमोह होता ? तीर्थंकरों की परम्परा मठाधीशों (और क्षेत्राधिपतियों) की परम्परा नहीं है। तीर्थंकरों की विशद परम्परा गगन के सदृश त्यागभाव से भरी, निर्लेप एवं निर्दोष रही है । (स्वरूप–सम्बोधन परिशीलन – पृष्ठ ८७)

इस संबंध में आ. शान्तिसागर महाराज का उदाहरण अनुकरणीय है – आचार्य महाराज ने किसी भी नये तीर्थ का निर्माण नहीं कराया । (प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ २२५) **महाराज तो जगत् की तरफ पीठ दे चुके हैं।** उनके ऊपर राजनीतिज्ञों सदृश उत्तरदायित्व का भार लाद नेताओं के समान उनके वक्तव्यों को प्राप्त करने की कल्पना करनेवाले भाई भूल जाते हैं कि **ये आत्मोन्मुख मुनिराज दुनिया की झंझटों को छोड़ चुके हैं,** जिन राजनीतिज्ञों को गौरव की वस्तु मान आज लोग उनसे प्रकाश पाने की आकांक्षा रखते हैं और उनके पथ पर चलने की इन गुरुओं से आशा करते हैं, वे बड़े अंधकार में हैं। (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ १४८)

जिनदीक्षा लेने का उद्देश्य है सांसारिक विकल्पों से मुक्त होकर निर्विकल्प–वीतराग दशा प्राप्त करना। दीक्षा लेकर भी जिसके लौकिक विकल्प नहीं छूटे उसका दीक्षा लेना व्यर्थ है।

अष्टपाहुड में कहा है –

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ।।मोक्षपाहुड ३१।।

अर्थात् – **जो मुनि लौकिक कार्योंसे उदासीन रहता है वह कर्मक्षय रूप आत्मकार्य में सावधान रहता है और जो लौकिक कार्योंमें जागरूक है वह आत्म-कार्य में उदासीन रहता है।**

इय जाणिउण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं ।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेण।।मोक्षपाहुड ३२।।

अर्थात् – ऐसा जानकर योगी सब तरह से सब प्रकार के व्यवहार को छोड़ता है और जिनेन्द्र देवने जैसा कहा है उस प्रकार परमात्मा का ध्यान करता है। (पृष्ठ ५९५)

जनसेवा आदि लौकिक कार्यों से लोकप्रियता प्राप्त कर लेना अलग बात है और तत्त्वज्ञ एवं चारित्रवान बनकर मोक्षमार्गी हो जाना अलग बात है। आत्मार्थी, मोक्षमार्गी का लौकिक यश-प्रतिष्ठा से कुछ भी संबंध नहीं है। क्षेत्रनिर्माण, स्कूल-कॉलेज बनवाना, समाजसेवा, स्टीकर, फोटो, पत्रिकाएँ और फ्लेक्स छपवाना आदि कार्यों से प्रसिद्धि पाने के लिए आत्मकल्याण को दुय्यम स्थान देनेवाले साधु को आ. कुन्दकुन्द समझाते हैं –

खाई-पूया-लाहं, सक्काराइं किमिच्छसे जोई ।
इच्छसि जइ परलोयं, तेहिं किं तुज्झ परलोयं।।१२२।।

अर्थात् – हे योगी! तू परलोक सुधारने की इच्छा करता है तो ख्याति-पूजा-लाभ-सत्कार आदि की इच्छा क्यों करता है? क्या इस प्रकार ख्याति-पूजा-लाभ-सत्कार की भावना करते हुए तेरा परलोक सुधरेगा? नहीं, इससे परलोक बिगड़ेगा ही। (रयणसार – पृष्ठ ९२)

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती कृत **नियमसार टीका** में कहा है – **जो कोई मुनि ख्याति, लाभ, पूजा आदि की अपेक्षा रखते हुए, सतत सभी लोगों को खुश करने वाली प्रवृत्ति के इच्छुक होकर, अपनी आत्मा की उपेक्षा करके ध्यान का अभ्यास नहीं करते हैं वे द्रव्यलिंगी बहिरात्मा ही होते हैं।** (पृष्ठ ४३८-४३९)

आ. देवनन्दि के शब्दों में –
ममता की पतवार न छोड़ी, आखिर दम ही तोड़ दिया ।
मुक्तिपथ के राही तूने, मंजिल से मुख मोड़ दिया ।।

(प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ १२७)

ऐसे आत्मघाती समाज सेवक साधुओं को आ.क. विवेकसागरकृत संबोधन का विचार करना चाहिये – **अरे ! तुमने घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, किस लिये?** आत्मकल्याण के लिये ! तो आत्मकल्याण करो । क्यों प्रपंचों में फंसते हो ? ...स्व में रमण कर । पर में भटकेगा तो संसार अटवी में अटक जायेगा । (मूलाचार प्रदीप – प्रस्तावना पृष्ठ १२-१३)

इसलिए जैन मुनि ने साधनापथ में प्रवेश के पूर्व ही स्त्री, मित्र, पुत्र, दुकान, मकान, बाह्य आडंबर का परित्याग कर दिया । क्योंकि ये सब साधना की विराधना करते हैं । साधनापथ के बाधक तत्त्व हैं । (सुनहरा अवसर – पृष्ठ २७)

क्षत्रचूडामणि में कहा है-जैनी तपस्या स्वेच्छाचार की विरोधी है। (२/१५)

श्रमण संस्कृतिमें जगत् को नहीं सम्हाला जाता है। श्रमण संस्कृतिमें मात्र अपने आपको सम्हाला जाता है। (इष्टोपदेश-सर्वोदयी देशना – पृष्ठ २५)

मोक्षमार्ग भवनों, वाहनों और बहानों का नहीं है, सुखसुविधाओं और भोगों का भी नहीं है, अपितु इन सबके त्याग का मार्ग है। यदि हम इस पर दृढ़ नहीं रहे तो कही आगामी पीढ़ी यह न समझने लगे कि मन्दिर, क्षेत्र और धर्मशाला आदि का निर्माण करना ही साधुओं का कार्य है ।

पीछी के साथ नहीं...

सन १९९९ के इन्दौर वर्षायोग के समापनपर आ. विद्यासागरकृत प्रवचन मननीय है – क्षेत्रोंका जीर्णोद्धार, रक्षा, नवनिर्माण आदिके लिए आवश्यकता होती है। यह सब पीछीके साथ न कीजिए। ...**परिग्रह के साथ जो धर्म की प्रभावना करना चाहते हैं, वे घर में रह करके करें,** किन्तु **हाथ में पीछी लेकर और परिग्रह रखकर चले यह पीछी की शोभा नहीं है। ... ध्यान रखो, जो व्यक्ति परिग्रह और आरंभ का समर्थन करेगा, जैन शासन में उसे श्रमण कहलाने का अधिकार नहीं है।** (इन्दौर चातुर्मास स्मारिका-१९९९, पृष्ठ ७१,७५) क्योंकि

दुनिया के कार्यों के लिए यह श्रमणत्व नहीं हैं । (श्रुताराधना - पृष्ठ ५१) मुनिदीक्षा लेने के बाद भी जिसके लौकिक कार्योंके विकल्प बने रहते हैं उसके लिए कहना चाहिए -

मक्का गये मदीना गये, बनकर आये हाजी ।
आदत गई न इल्लत गई, फिर पाजी के पाजी ।।

कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा (टीका) में कहा है - **(स्कूल-कॉलेज आदि का निर्माण तो दूर) देवपूजा, चैत्यालय, संघ और यात्रा वगैरह के लिये भी मुनियोंका आरम्भ करना ठीक नहीं है। तथा गुरुओंके लिये वसतिका बनवाना, भोजन बनाना, सचित्त जल, फल, धान्य वगैरहका प्रासुक करना आदि आरम्भ भी मुनियोंके लिये उचित नहीं है, क्योंकि ये सब आरम्भ हिंसाके कारण हैं ।** (४०६, पृष्ठ ३०८)

मूलाचार में कहा है -

पुढवीय समारंभं जलपवणग्गीतसाणमारंभं ।
ण करेंति ण कारेंति य कारेंतं णाणुमोदंति ।।८०४।।

आचारवृत्ति - पृथ्वी का खोदना, उसमें कुछ उत्कीर्ण करना, उसका चूर्ण आदि करना यह सब समारम्भ कहलाता है। ऐसे ही जल का सिंचन करना, फेकना, हवा का बीजन करना अर्थात् पँखे से हवा करना, अग्नि को जलाना, त्रस जीवों का मर्दन करना-उन्हें त्रास आदि देना, इन क्रियाओं को धीर मुनि न करते हैं न कराते हैं और करते हुए को न अनुमति ही देते हैं। (उत्तरार्ध-पृष्ठ५८)

इसलिए **मूलाचार प्रदीप** में कहा है -

मत्वेति तत्समारम्भो, जातु कार्यो न योगिभिः ।
स्वेन वान्येन मुक्त्याप्त्यैः, चैत्यगेहादि कारणैः ।।६४।।

यहीं समझकर मुनियों को मोक्ष प्राप्त करने के लिये स्वयं वा दूसरे के द्वारा जिनालय आदि बनवाकर भी पृथ्वी का समारंभ नहीं करना चाहिए। (पृष्ठ ९)

इसका कारण **अष्टपाहुड** में कहा है - जिस प्रकार तत्काल का उत्पन्न हुआ बालक निर्विकार और नग्न रहता है उसी प्रकार जिनदीक्षामें निर्विकार रूप धारण किया जाता है। जिस प्रकार सर्प अपना बिल स्वयं

नहीं बनाता, अपने आप बने हुए अथवा किसीके द्वारा बनाये हुए बिलमें निवास करता है उसी प्रकार जिनदीक्षा का धारक साधु अपना उपाश्रय स्वयं न बनाकर पर्वतकी गुफा तथा वृक्षकी कोटर आदि अपने आप बने हुए अथवा किसी अन्य धर्मात्मा के द्वारा बनवाये हुए मठ आदि में निवास करता है । (बोधपाहुड-५१, पृष्ठ २२३-२२५)

इसलिए मुनि पुलकसागर कहते हैं - **वह (जैन संत) अपने रहने के लिए मठ, मंदिर, आश्रम नहीं बनाता है न ही उन पर स्वामित्व रखता है ।** (ऐसे भी जिया जाता है - पृष्ठ ६६) क्योंकि किसी भी प्रकार के आरंभ कार्य में दसवीं प्रतिमाधारी श्रावक भी अनुमति नहीं दे सकता। **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** में कहा है -

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरत: स मन्तव्य: ।।१४६।।

अर्थात् - जो धन-धान्यादिक परिग्रह तथा **इस लोक संबंधी विवाह, अर्थार्जन, खुदाई, बांधकाम आदि आरंभ कार्यों में अनुमति नहीं देता है** तथा इष्टानिष्ट परिणति में समबुद्धि रहता है, उसे अनुमतित्याग प्रतिमा का धारक श्रावक जानना चाहिए ।

इससे स्पष्ट होता है कि साधुपद ग्रहण करके लौकिक कार्यों में रममाण होने से तो दसवीं अनुमतित्याग प्रतिमा का भी पालन नहीं हो सकता हैं । पुन: जो पर के विकल्पों में फँसकर अपना स्वयं का कल्याण करने में ही प्रयत्न नहीं करता है उसका कैसे विश्वास कर सकते है कि वह दूसरों का कल्याण कर पायेगा ?

आनन्दयात्रा

प्रश्न - लोगों को आकर्षित करने के लिए साधुओं के द्वारा आनन्दयात्रा अथवा प्रश्नमंच आदि आयोजित करके अथवा अन्य समय भी दर्शनार्थियों को पेन, माला, फोटो आदि वस्तुएँ बाँटना/बँटवाना कहाँ तक उचित है ?

समाधान - आदिपुराण में कहा है-मोक्षमार्गी की साधना में अपनी ज्ञानसंपत्ति को लगाने वाले मुनीश्वरों को जनसमुदाय को प्रसन्न करने से अपनी इष्टसिद्धि प्रतीत नहीं होती । (९/१६२) **मूलाचार** (८३८)

के अनुसार भी मुनि 'छिण्णणेहबंध' अर्थात् स्त्री-पुत्र, परिवार, मित्र, भक्त आदि में स्नेहरहित होने से उन्हें लोगों को आकर्षित करने की अथवा भक्त जोड़ने की इच्छा ही नहीं होती है।

योगसार प्राभृत में कहा है -

आराधनाय लोकानां मलिनेनान्तरात्मना ।
क्रियते या क्रिया बालैर्लोकपंक्तिरसौ मता ।।८/२०।।

अर्थात् - अन्तरात्मा के मलिन होने से मूर्ख लोग जो लोक को रंजायमान करने के लिए क्रिया करते हैं उसे बाल अथवा लोकपंक्ति क्रिया कहते हैं।

भक्त और भीड़ के प्रेमी साधु के लिये **परमात्मप्रकाश (टीका)** में कहा है -

जो जीव अपने माता, पिता, पुत्र, मित्र, कलत्र इनको छोड़कर दूसरे के घर और पुत्रादिकों में मोह करते हैं, वे भुजाओं से समुद्र को तैरके गायके खुरसे बने हुए गढ़ेके जलमें डुबते हैं। (पृष्ठ २११)

आ. पुष्पदन्तसागर उन्हें सावधानता का इशारा देते हैं -

''पर को रिझाने की कोशिश में अपना कही पराया न हो जाये ।''
(वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है ...... पृष्ठ ७)

अगर धर्मात्मा बनना है, तो भीड़ से मुक्त होओ । (अमृत कलश - पृष्ठ ९८) क्योंकि **भीड़ से घिरा रहना और मेला लगा रहना कोई महान साधुता की निशानी नहीं है।**

रे हंसा चल उस पार, उससे ही होगा तेरा बेड़ा पार ।
गर चाहिये मुक्ति का द्वार, तो मत कर भीड़ बेकार ।।

तत्त्वार्थवृत्ति में कहा है- कुत्सित राग को बढ़ाने वाला हँसी-मजाक करना, बहुत बकने और हँसने की आदत रखना ये हास्यवेदनीय (नामक चारित्रमोहनीय कर्म) के बन्ध के कारण हैं। (६/१४,पृष्ठ ४७८) इसलिए -

भंजसु इंदियसेणं भंजसु मणोमक्कडं पयत्तेण ।
मा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु ।।भावपाहुड ८८।।

अर्थात् - **हे बाह्यव्रतवेष के धारक साधो ! तू लोगों का रंजन करने**

वाले कार्य मत कर । (अष्टपाहुड) क्योंकि जो नित्य ही बहुजनमें हास्य करते हैं वे (नीच) कन्दर्प देवोंमें उत्पन्न होते हैं । (तिलोय पण्णत्ती-३/२०२, खण्ड १ - पृष्ठ १३६)

मूलाचार प्रदीप में कहा भी है -

चौराणां बहुदेशानां, मिथ्यादृष्टिकुलिंगिनाम् ।
अर्थार्जनं विधीनां च, भाषणं वैरिणां भुवि ।।३३४।।
मृषास्मृतिकुशास्त्रादि, पुराणानां च या कथाः ।
विकथास्ता न कर्त्तव्या, न श्रोतव्या अघाकराः ।।३३५।।

अर्थ - चोरों की कथा, अनेक देशों की कथा, मिथ्यादृष्टि कुलिंगियों की कथा, धन उपार्जन के कारणों की कथा, शत्रुओं की कथा, मिथ्या स्मृतिशास्त्र, कुशास्त्र, मिथ्या पुराणों की कथायें या पाप उत्पन्न करनेवाली विकथायें कभी नहीं कहनी चाहिये न सुननी चाहिये । (पृष्ठ ५१)

आगे कहते हैं -

विकथाचारिणां स्वान्य वृथा जन्म विधायनाम् ।
दुर्धियां क्षणमात्रं न संगमिच्छन्ति धीधनाः ।।२४३८।।

अर्थात् - जो विकथा कहनेवाले लोग अपना और दूसरों का जन्म व्यर्थ ही खोते हैं, ऐसे मूर्ख लोगों की संगति वे बुद्धिमान मुनिराज एक क्षणभर भी नहीं चाहते हैं। तथा हँसी उत्पन्न करनेवाले दुर्वचन भी कभी नहीं कहते हैं। (पृष्ठ ३७२-३७३)

यतो येन पराहारं गृहीत्वा कुर्वते शठाः ।
चतुर्धा विकथां तेषां वृथा दीक्षाघसंचयात् ।।५६५।।

अर्थ - इसका कारण यह है कि **जो अज्ञानी मुनि दूसरे का आहार ग्रहण करके भी चारों प्रकार की विकथा में लगे रहते हैं उनकी दीक्षा भी व्यर्थ है,** क्योंकि विकथाओं के कहने से उनके निरंतर पापों का संचय होता रहता है। (पृष्ठ ८९)

टीवी, कम्प्युटर आदि मनोरंजन के साधन तो घर-घर में हैं। **जिनवाणी की सभा और गुरुचरणों में भी मनोरंजन ही होने लगेगा तो आत्मरंजन कहाँ होगा ?** तथा **गृहस्थों को भी गुरुजनों के समीप**

स्वच्छन्दतापूर्वक हँसी-मजाक नहीं करनी चाहिये। (यशस्तिलक चम्पू-८/३६०, उत्तरखंड - पृष्ठ ४५४)

अत: **आनन्दयात्रा का आयोजन मुनि और गृहस्थ दोनों के लिए दोष ही है** क्योंकि साधुओं को कभी भी हास्यकथा नहीं करना चाहिए ऐसी शास्त्राज्ञा है ।

न हि जादुगर की वृत्ति होना चाहिए । गीत, संगीत, नृत्य-गायन के त्यागी होते हैं दिगम्बर धन (मुनि) कृत-कारित-अनुमोदना से । (समाधितंत्र अनुशीलन - पृष्ठ २७९)

एक बार दुर्ग चातुर्मास (सन १९८०) के समय वहाँ के समाज के बच्चों-बच्चियों द्वारा धार्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रम रात्रि में चल रहा था । उसी समय कुछ महाराज जब छत पर लघुशंका के लिए आये, तो देखा यहाँ से प्रोग्राम दिख रहा है, बस क्या था वे वही बैठ गये, प्रोग्राम देखने । कुछ समय पश्चात् पूज्य आ. श्री सन्मतिसागरजी महाराज भी आये, उन्होंने देख लिया - ये लोग छुपकर प्रोग्राम देख रहे हैं, तब तो कुछ नहीं कहा, धीरे से निकल कर कमरें में आ गए । वे महाराज लोग भी पूरा प्रोग्राम देख कर कमरे में चले गये ।

सुबह हुई ...

दैनिक स्तुति-पाठ के पश्चात् पूज्य आचार्य श्री ने गंभीर वाणी में कहा, ''कल रात्रि में बिना आज्ञा अनुमति के कार्य कैसे हुआ, संघ का अनुशासन था कि सांस्कृतिक प्रोग्राम साधक जन नहीं देखते, फिर भी छुप-छुप कर प्रोग्राम देखा गया । शर्म नहीं आई आपको, यही सब देखना था तो दीक्षा क्यों ली, घर क्यों छोड़ा, देखते रहते घर में बैठकर ।'' (तपस्वी सम्राट - पृष्ठ २६-२७)

प्रश्नमंच आदि में भी पुरस्कार अथवा अन्य किसी रूप में पेन, फोटो, मालाएँ अथवा अन्य वस्तुएँ बाँटने-बँटवाने से पूर्व पूज्यपादाचार्य के मन्तव्य पर ध्यान देना आवश्यक है। **इष्टोपदेश** में वे कहते हैं -

त्यागाय श्रेयसे वित्त-मवित्त: संचिनोति य: ।
स्वशरीरं स पंकेन स्नास्यामीति विलिम्पति।।१६।।

अर्थात् - दान करने के लिए काम आयेगा ऐसा सोचकर जो (धन, पेन, फोटो, मालाएँ आदि) द्रव्य का संग्रह करता हैं, वह मानो बाद में स्नान करूँगा ऐसा विचार कर अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता है। इसलिए साधुओं को बाँटने के लिए भी फोटो, मालाएँ आदि ग्रहण नहीं करना चाहिए।

समाधितन्त्र में कहा भी है -

बहिस्तुष्यन्ति मूढात्मा पिहित ज्योतिरन्तरे ।
तुष्यत्यन्त: प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुक: ।।६०।।

अर्थात् - मूढ़ बहिरात्मा बाह्य परपदार्थो में और विवेकी अन्तरात्मा आत्म स्वरूप में ही सन्तुष्ट रहता है ।

नकली भक्त

आ. विरागसागर द्वारा कथित एक उद्बोधक घटना है - एक बालक एक बार मेरे पास आया। उसने कहा- महाराज मुझे पेन दे दो।

मैंने कहा- भईया, पेन की मेरे पास दुकान नहीं है। दुकान होती तो मैं तुम्हें पेन दे देता।

उसने कहा - रखे होंगे।

मैंने कहा - मैं अपरिग्रही हूँ। मैं अनावश्यक सामग्री नहीं रखता हूँ, मात्र संघ साधना की दृष्टिकोण से उतना ही रखता हूँ जितना शास्त्रों में रखने योग्य कहा है।

उसने कहा - आपके पास रखे नहीं है तो कोई बात नहीं है । मैं पेन का एक पैकेट लाकर रखे दे रहा हूँ, तो आप बाँट देना।

मैंने कहा - मैं बाँटने का काम क्यों करूँ ? नौकरी क्यों करूँ ? आखिर में मुझे क्या लेना तुमसे, कि जो मैं तुम्हारी सामग्री बाँटने के लिए बैठूँ ? मैं नहीं बाँटूंगा। बाँटना है तो अपने हाथ से बाँटो। हाँ, **अपने**

साधर्मी व्यक्ति साधुजन हैं मैं उनको उपकरण दे सकता हूँ, बाकी कुछ नहीं दे सकता हूँ। मैं तुम्हारे लिये क्यों बाँटू?

तीसरे ने कहा – महाराज, रख लो सही। लोक आते रहेंगे। बच्चे लोग आते रहते हैं। इसी के बहाने बच्चे मान जाते हैं।

मैंने कहा – यह बहाने का काम भी मैं करना नहीं चाहता हूँ। यदि मैं ऐसा करना शुरु कर दूँगा तो जो असली-असली क्रीम (भक्त) है वो टूटना प्रारंभ कर देगी और वह नकली-नकली क्रीम (भक्त) प्रारम्भ हो जायेगी, भक्त नहीं मिलेंगे फिर मुझे। फिर मुझे मिलेंगे वो व्यक्ति जो पेंसिल आदि वस्तुओं के लोभी होंगे। प्यासे हृदयवाले व्यक्ति नहीं मिलेंगे। (तीर्थंकर ऐसे बनो – पृष्ठ २१२)

प्रश्नमंच से लोगों का ज्ञान बढ़ता है यह तर्क भी थोथा है क्योंकि प्रश्नमंच में जिस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं उनसे लोगों का क्या कल्याण होता है यह विचारणीय है। क्योंकि **सच्चा ज्ञान तो वह है, जिससे हित की प्राप्ति और अहित का परिहार हो ।** (परीक्षामुख – १/१)

अष्टपाहुड में कहा है –

धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं ।
कुद्दाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ।।बोधपाहुड ४६।।

गाथार्थ – धन, धान्य तथा वस्त्रका दान, चाँदी-सोना आदिका सिक्का तथा शय्या, आसन और छत्र (फोटो, यंत्र, माला, मोती, मणि) आदि खोटी वस्तुओंके दानसे जो रहित है, ऐसी दीक्षा कही गई है। (पृष्ठ २१२)

इसका कारण यह है कि शल्यों का अभाव होने पर ही व्रत के सम्बन्ध से व्रती होता है। सशल्य होने से व्रतों के रहते हुए भी व्रती नहीं कहा जा सकता। जो नि:शल्य होता है वही व्रती है। और द्रव्य शल्य तीन प्रकारकी है–

सचित्त शल्य : (ड्राईवर आदि नौकर) दासादि सचित्त द्रव्य शल्य हैं।
अचित्त शल्य : (मालाएँ, मोती, फोटो, गॉगल, कम्प्युटर, मोबाईल, नॅपकीन, गाड़ी, यंत्र, रुपये) सुवर्ण आदि पदार्थ अचित्त शल्य हैं।
मिश्र शल्य : (क्षेत्र, त्यागी भवन, आश्रम) ग्रामादिक मिश्र शल्य हैं।

(तत्त्वार्थ मञ्जूषा (द्वितीय खण्ड) – पृष्ठ ३०८)

पुनः सूर्यास्त के समय से सामायिक करना यह साधुओं का आवश्यक मूलगुण है। उन्हें सूर्यास्त के समय सामायिक करके रात्रि में सूर्यास्त के बाद दो घड़ी (४८ मिनट) बीत जाने पर पूर्वरात्रिक स्वाध्याय करना चाहिए। (मूलाचार पूर्वार्ध, पृष्ठ २२८) जिस आवश्यक की जो वेला है उसी वेला में वह आवश्यक करना चाहिए, अन्य वेला में नहीं। (पृष्ठ २९८) इसलिए आनन्दयात्रा के निमित्त से **सूर्यास्त के समय सामायिक नहीं करके अन्य समय में करना काल-प्रतिसेवना नामक दोष है।**

वे (आ. महावीरकीर्ति) ख्याति-पूजा-लाभ की आदि से दूर रहने का प्रयत्न करते थे। जनसंपर्क से रहित व्यक्ति ही आत्मसाधना कर सकता है – ऐसा मानने वाले आचार्यश्री रात्रिकाल में बोलने की बात तो दूर, दिन में भी अधिकांश समय मौन रखा करते थे। साधना काल के निर्धारित समय में वे किसी कार्यक्रम आदि में भी सहभागी नहीं होते थे। अपने आवश्यकों का वे यथाविधि और यथासमय ही पालन करते थे। (श्रमण सूर्य – पृष्ठ २८१)

इसी लिए आ. पुष्पदन्तसागर ने कहा था – दिगम्बर मुनि रात्रि में नहीं बोलते। (अमृत कलश – पृष्ठ १५९)

यदि ऐसा है तो फिर आनन्दयात्रा/प्रश्नमंच जैसे आयोजन कैसे हो सकते हैं ? अपने व्रत एवं मुनिपद की गरिमा नष्ट करनेवाले ये फूहड़ आयोजन करके लोकप्रियता पाने का प्रयत्न वे ही करते हैं, जिनको अपनी साधना पर विश्वास नहीं होता हैं।

जन्मदिवस

प्रश्न – साधुओं के द्वारा अपने जन्मदिवस, दीक्षादिवस आदि मनाने में क्या बाधा है?

समाधान – जन्मोत्सव मनाना यानि मिथ्यादर्शन का समर्थन है, इसलिए ऐसा न करें। (इस काल में) यहाँ जन्म लेने वाले मिथ्यादर्शन-मिथ्याचारित्र के साथ ही यहाँ आते हैं और उनकी जन्म-जयन्ती मनना

मिथ्यादर्शन–मिथ्याचारित्र की ही जयन्ती है ।... ध्यान रखिये बन्धुओं ! मिथ्यादृष्टि की जयन्ती मनाना, मिथ्यादर्शन एवं मिथ्याचारित्र का पूज्यत्व स्वीकार करना है, जो कि संसार परिभ्रमण का ही कारण है । (समग्र खण्ड ४ (प्रवचन प्रमेय) – पृष्ठ ४३६)

साधुओं को किसी विशिष्ट तिथि अथवा समारोह से कोई लगाव नहीं होता है । वे तो ख्याति, लाभ, पूजा, भीड़ आदि की इच्छा से रहित होते हैं । जिसने (जन्मदिवस, दीक्षादिवस, कोजागिरी पूनम, नववर्ष–दिवस आदि) उत्सव की तिथि का परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकार के परिग्रह से बिलकुल निस्पृह है तथा घर से रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है। (पद्मपुराण–२५/११३, भाग २ – पृष्ठ १४०)

इस विषय में आचार्य पुष्पदन्तसागर का मन्तव्य ध्यान देने योग्य है –

प्रश्न : वर्तमान में कुछ लोग कानजी भाई, चंपा बेन एवं मुनिराजों की जन्म जयन्ती मनाते हैं । क्या यह उचित है ?

उत्तर : जन्म जयन्ती तो सम्यग्दृष्टि की मनाना चाहिए । इस काल में कोई भी सम्यग्दर्शन को लेकर पैदा न होगा; सभी का जन्म मिथ्यात्व के साथ होता है । यदि आप जन्म जयन्ती का समर्थन करते हैं तो मिथ्यात्व का पोषण होता है । ... यह सब लौकिक प्रथायें हैं, आत्मपिपासु लोगों को जन्म जयन्ती से काफी दूर रहना चाहिए । (प्रश्न आज के – पृष्ठ २०१)

इससे स्पष्ट होता है कि **साधुओं के द्वारा अपने जन्मदिवस, दीक्षादिवस आदि स्वयं मनाना अथवा औरों के द्वारा मनवाना अनुचित हैं।** अत: **जन्म जयंती न मनाकर हमें अपनी शाश्वत सत्ता का ही ध्यान करना चाहिए ।** (समग्र खण्ड ४ (प्रवचन प्रमेय) – पृष्ठ ३२)

तथा गृहस्थों को भी चाहिये के वह ऐसे अनावश्यक आयोजन करने के बजाय **प्रतिदिन अपने घर के सामने साधुओं का पड़गाहन करके आहारदान करने का फल प्राप्त करें,** इसी में उनका कल्याण है। यहाँ उल्लेखनीय है कि राम और सीता ने वन में रहते हुए भी मुनियों को

आहार दिया था।

तथा मुनियों को भी चाहिये कि वे अपने जन्मदिवस, दीक्षादिवस आदि मनाने के बजाय तीर्थंकरों के कल्याणकों के दिन जो विशिष्ट क्रिया करने की शास्त्राज्ञा है, उसके अनुसार क्रिया करें ।

सर्वधर्मसंमेलन

प्रश्न – दिगम्बर साधुओं के द्वारा सर्वधर्मसंमेलन आयोजित करने में भी क्या कोई दोष है ?

समाधान – मूलाचार (टीका) में कहा है – तीर्थंकर वर्धमान के इस तीर्थ (जैन धर्म) से बढ़कर अन्य कोई तीर्थ विश्व में नहीं है ऐसा जो निश्चय करते हैं, उन साधुओं की लिंगशुद्धि होती है ।।७७८।। (उत्तरार्ध पृष्ठ ४६)

आप्तमीमांसा में कहा है –

तीर्थकृत् समयानां च परस्परविरोधत: ।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः ।।३।।

अर्थात् – सभी धर्मों के प्रणेते तथा उनके शास्त्रों में परस्परविरोध पाया जाने से यह निश्चित होता हैं कि वे सब आप्त अर्थात् सच्चे देव नहीं हैं, उनमें से कोई एक ही जगत् का गुरु – सच्चा देव हैं ।

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ।।६।।

अर्थात् – वह (सच्चा देव) (हे जिनेन्द्र भगवान) तुम ही हो क्योंकि सिद्धान्तों से अविरुद्ध तुम्हारे तत्त्व किसी प्रकारसे बाधित नहीं होते हैं – सर्वत्र और सर्वकाल में सत्य हैं ।

आचार्य अकलंकदेव **तत्त्वार्थवार्तिक** में कहते हैं – **सभी देवताओं और सभी शास्त्रों में बिना विवेक के समान भाव रखना वैनयिक मिथ्यात्व है।** (८/१/२८, पृष्ठ ७४५)

सूक्तिमुक्तावली शतक में कहा है – सभी धर्मों को समान कहता हुआ जो दुर्बुद्धि परमश्रेष्ठ जैनमत को अन्य मतों के समान मानता है वह मानो अमृत को विष के समान मानता है।।१९।। (पृष्ठ १८)

कुचैत्य (कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु) आदि की प्रतिष्ठा (स्तुति, पुरस्कार) आदि करना यह मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा होनेवाली मिथ्यात्व क्रिया है। (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार–६/५–३, पुस्तक ६ – पृष्ठ ४५५)

मिथ्यात्व क्रिया, मिथ्यात्व क्रिया के साधन और मिथ्यात्व के कारणों में प्रविष्ट मिथ्यादृष्टियों की 'यह उत्तम है, श्रेष्ठ है अथवा तू बहुत अच्छा करता है' आदि शब्दों से प्रशंसा करके उन्हे मिथ्यात्व में दृढ़ करना मिथ्यादर्शन क्रिया है। (तत्त्वार्थवार्तिक–६/५/११ – पृष्ठ ५१०)

जो मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा–संस्तवन करने वाला मूढ़दृष्टि है, वह (जिन)शासन की प्रभावना तो कर ही नहीं सकता। (तत्त्वार्थवृत्ति–७/१३, पृष्ठ ५३३) अपितु भोले–भोले लोग उसके कारण अन्यमतियों को श्रेष्ठ मान कर भ्रष्ट जरूर हो सकते हैं । इसलिए मूलाचार प्रदीप में कहा है –

कुदेव–लिङ्गी–पाषण्डि मठबिम्बानि भूतले ।
कुतीर्थानि कुशास्त्रानि षडायतनानि च ।।६१३।।
मिथ्यात्ववर्द्धकान्येव स्थानानि प्रचुरान्यपि ।
पश्येज्जातु न सद्दृष्टि र्दृग्रत्न मलशंकया ।।६१४।।

अर्थ : सम्यग्दृष्टि पुरुषों को कुदेव, कुलिंगी, पाखंडी, उनके मठ, उनके प्रतिबिंब, कुतीर्थ, कुशास्त्र, छहो अनायतन आदि कभी नहीं देखने चाहिये। क्योंकि ये बहुतसे स्थान मिथ्यात्व को बढ़ानेवाले हैं । इसलिये सम्यग्दर्शन रूपी रत्न में मल उत्पन्न होने की शंका से डर कर ऐसे स्थान कभी नहीं देखने चाहिये । (पृष्ठ ९८–९९) जो यहाँ (कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु आदि) कुतीर्थों में गमन करते हैं वे अशुभ अंगोपांग नामकर्म का बंध करके परभव में लंगड़े होते हैं । (पार्श्वनाथ चरित्र–२१/६०–६१, पृष्ठ २७९)

मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबन्धी कषायों के नोकर्मद्रव्य अर्थात् उदय में सहायक द्रव्य छह अनायतन हैं । (गोम्मटसार कर्मकाण्ड–७४,७५– पृष्ठ ४३) इसलिए राग–द्वेष से लिप्त कुदेवों के उपासक तथा सांसारिक सुखों में आसक्त परिग्रहवान् कुलिंगियों की संगति करना मिथ्यात्व का पोषक है।

उच्छाहभावणासंपसंससेवा कुदंसणे सद्धा ।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणधम्मं ।।चारित्रपाहुड १३।।

अर्थात् – अज्ञान और मोहके मार्गरूप मिथ्यामतमें उत्साह, उसमें उसकी भावना, प्रशंसा, सेवा और श्रद्धा करता हुआ पुरुष जिनधर्म–सम्यक्त्व को छोड़ देता है ।

इसलिए असंयमी और विधर्मी लोगों के साथ संसर्ग और गृहस्थ जैसे सुखों में (एवं कार्यों में) आदर ये बातें आचार्यों और मुनियों के लिए निषिद्ध कही गई हैं, किन्तु जो आगम की अवज्ञा कर इन्हीं (असंयमी लोगों से मेलजोल, नेताओं को तथा विधर्मी जनों को– मिथ्यादृष्टि साधुओं को बुलाना आदि) बातों को श्रेयस्कर मानते हैं एवं इनमें ही अहर्निश अनुरक्त रहते हैं वे स्वच्छन्द कहे जाते हैं । (मरण कण्डिका – पृष्ठ ११०)

शास्त्रों में ख्याति–पूजा–लाभ की इच्छा से भरे ज्ञानी को अज्ञानी, मूढ़ कहा है । (अमृत कलश – पृष्ठ ७५)

पत्थर की नाव सदृश ऐसे आगमविरोधी स्वच्छन्द साधु स्वयं संसार समुद्र में डूबते हैं और अन्य को भी डुबोते हैं। (मरण कण्डिका पृष्ठ – ५५७) सो ही **छहढाला** में कहा है –

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव ।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह ।।२/९।।
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव।...।।१०।।

ऐसे मुनि के विषय में **अष्टपाहुड** (टीका) में कहा है – जिनेन्द्रदेव का उपदेश सुनकर सम्यग्दर्शन से हीन मनुष्य को नमस्कार (नमोस्तु) नहीं करना चाहिये। धर्म की जड़स्वरूप सम्यग्दर्शन ही जिसके पास नहीं है वह धर्मात्मा कैसे हो सकता है? और जो धर्मात्मा नहीं है वह वन्दना या नमस्कार का पात्र किस तरह हो सकता है? (नहीं हो सकता।) ऐसे मिथ्यादृष्टियों के लिये दान देनेवाला दाता मिथ्यात्व को बढ़ानेवाला है। (दर्शनपाहुड गाथा २ की टीका – पृष्ठ ४)

ऐसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों ने अपने क्षायोपशमिक ज्ञान को कुशास्त्रों केअध्ययन एवं कुकविताओं के सृजन में लगाकर आत्मा का घात किया है । ....वे जीव स्व–पर का अहित कर लेते हैं जो कुशास्त्रों का श्रवण कर रहे हैं व करा रहे हैं। (समाधितंत्र अनुशीलन – पृष्ठ १४)

इसलिए सभी धर्म समान हैं ऐसा मिथ्यात्वपूर्ण प्रचार करने वाले स्वच्छन्द साधुओं की संगति नहीं करनी चाहिए।

मोक्षमार्गप्रकाशक में उद्धृत किया है –

तं जिणआणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि ।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्स कहगाओ ।।

अर्थ – जो जिनआज्ञा माननेमें सावधान है, उसे निर्ग्रन्थ सुगुरु ही के निकट धर्म सुनना योग्य है, अथवा उन सुगुरु ही के उपदेशको कहनेवाला उचित श्रद्धानी श्रावक हो तो उससे धर्म सुनना योग्य है । (पृष्ठ १७)

समाचारपत्र

प्रश्न – समाचारपत्र पढ़ने से दुनिया का ज्ञान होता है । फिर साधुओं को समाचारपत्र क्यों नहीं पढ़ने चाहिये ?

समाधान – समाचारपत्र पढ़ने से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह सब लौकिक ज्ञान है । उसकी मोक्षमार्ग में कुछ भी आवश्यकता नहीं है। मुनिदीक्षा लौकिक ज्ञान के लिये नहीं अपितु आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये ली जाती है । इसलिये गणधराचार्य कुन्थुसागर इस विषय में कहते हैं – समाचारपत्र में क्या है ? विकथा है – राष्ट्रकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथा, चोरकथा, इनके अलावा समाचारपत्रों में कुछ नहीं है । ...आचार्यों ने कहा हैं कि पेपर पढ़ने में आपका समय व्यर्थ चला गया । (स्याद्वाद केसरी – पृष्ठ ३२८)

विहार

प्रश्न – जैन साधु विहार कब और कैसे करते हैं ?

समाधान – भगवती आराधना (टीका) में कहा है – सूर्यके प्रकाशका स्पष्ट फैलाव और उसकी व्यापकता उद्योतशुद्धि है। चन्द्रमा, नक्षत्र आदिका प्रकाश अस्पष्ट होता है और दीपक (टॉर्च, गाड़ी के हेडलाईट) आदिका प्रकाश व्यापक नहीं होता। (जिससे मार्ग में स्थित छोटे-छोटे जीवों को बचाना असम्भव होता है।) (१९८५, पृष्ठ ५९९)

इसलिए **मूलाचार प्रदीप** में कहा है –

अस्तं गते दिवानाथेऽथवा भानुदयावृते ।

विधेय गमनं जातु न सत्सुकार्यराशिषु ।।२७०।।
यतो रात्रौ म्रियन्ते व्रजनेनादृष्टिगोचरे ।
पञ्चाक्षा बहवस्तस्मान्नश्येदाद्यं महाव्रतम् ।।२७१।।

अर्थ – **यदि कैसा ही और कितना ही श्रेष्ठ कार्य आ जाय; तथापि सूर्य अस्त होनेपर, अथवा सूर्य उदय होने के पहले कभी गमन नहीं करना चाहिये ।** क्योंकि रात्रिमें गमन करने से दृष्टि के अगोचर ऐसे अनेक पंचेन्द्रिय जीव मर जाते हैं; जिससे अहिंसा महाव्रत सर्वथा नष्ट हो जाता है । (पृष्ठ ४१-४२)

यही कारण हैं कि **दिगंबर मुनि दिन में ही ''पद विहार'' करते हैं, रात्रि में नहीं ।** (कौन कैसे किसे क्या दे ? – पृष्ठ १५)

उन दिगंबर संतों का जब सब प्रकार के परिग्रह का त्याग होता है तब वाहन का प्रश्न ही नहीं उठता और दूसरी बात यह है कि वे किसी भी जीव को दुख नहीं देना चाहते । अगर वाहन में सवारी करेंगे तो नीचे जमीन पर चलनेवाले छोटे-छोटे जीव मर जायेंगे – उन जीवों की रक्षा नहीं हो पायेगी । इसीलिये पूर्ण रूप से सभी जीवों की रक्षा करने के उद्देश्य से संत महात्मा जीवन पर्यंत के लिये (किसी भी प्रकार के) वाहन में बैठने का, आने-जाने का त्याग कर देते हैं और फिर जीवन भर पैदल ही विहार करते हैं । (कदम-कदम पर मंजिल (भाग ४) – पृष्ठ २६७)

सब शास्त्रों सार यही है कि **साधुओं का पैदल विहार ही जिनसम्मत है । अतः यात्रादिक के व्याज (बहाने) पालकीका आश्रय करनेवाला साधु अपनी ईर्यासमितिको नियमसे खण्डित करता है इसमें संदेह नहीं है ।** (सम्यक् चारित्र चिन्तामणिः-४/१४-१५, पृष्ठ ४५-४६) इसलिए **कितनी भी दूरी तय करना हो, (जैन मुनि) हमेशा पैदल ही चलते हैं ।** (संत साधना – पृष्ठ ९) **क्षुल्लक जी भी वाहन का प्रयोग नहीं करते हैं ।** (पृष्ठ २४)

डोली आदि का विधान तो अत्यावश्यक होने पर किया गया है, वह भी कभी-कभी – हमेशा के लिए नहीं, आपत्तिकाल में अल्प मार्ग तय करने के लिए, लंबे-लंबे विहार और रोज-मर्रा के लिए नहीं । (आचार्य

समीक्षा – पृष्ठ २३)

क्षुल्लक सिद्धसागर को (आचार्य शान्तिसागर) महाराज ने कहा था – **'रेल मोटर से मत जाना ।'** इस आदेश के प्रकाश में उच्च त्यागी अपना कल्याण सोच सकते हैं, कर्तव्य जान सकते हैं । (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ३६०)

आ. वीरसागर मुनिराज के जीवन की मार्गदर्शक घटना है – एक दिन सम्मेदशिखर की यात्रा में जाते समय उनको १०४ डिगरी बुखार आ गया । बहुत जोर से ठंड लग रही थी, शरीर कांप रहा था । संघ के लोगों ने डोली में बिठाकर ले जाने का प्रयास किया । परन्तु महाराज ने डोली का स्पर्श तक नहीं किया । इतने अधिक बुखार में भी पैदल १२ मील जाकर रूके । (गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रंथ – पृष्ठ २/७०)

इसी प्रकार महातपोमार्तण्ड आ. श्री. सन्मतिसागर स्वामी की वृद्धावस्था (७२ वें वर्ष) का बोधप्रद प्रसंग है – १५ अप्रैल २००९ के प्रातः जब शिरहट्टी के श्रावक अपने गाँव पधारने हेतु बारंबार निवेदन करने लगे तो गुरुवर अपने आसन से खड़े हुए, किन्तु उन्हें कदम रखने में कठिनाई हो रही थी । जब उनका चलने में संतुलन बिगड़ने लगा तो उनको निवेदन किया गया कि गुरुवर ! हमारे आग्रह को स्वीकार कर डोली में बैठ जाइए।

गुरुजी बोले – नहीं, यह नहीं होगा । ... मैं कभी भी डोली में नहीं बैठूँगा। जब तक जंघाबल है तब तक ही मेरा जीवन है । जिस दिन जंघाबल समाप्त हो जाएगा, मैं चल नहीं सकूँगा, उस दिन यह तन छोड़ दूँगा । ... बहुत जरूरी हुआ तो किसी के हाथ का सहारा ले सकता हूँ, जड़ या चेतन वाहन का प्रयोग बिल्कुल नहीं । (अनूठा तपस्वी – पृष्ठ ३७३–३७४)

विवाह

प्रश्न – विवाहयोग्य युवक–युवतियों के विवाह सम्बन्ध जोड़ना यह तो बहुत बड़ी समाजसेवा है। क्या साधु यह कार्य भी नहीं कर सकते?

समाधान – अष्टपाहुड में कहा है –

जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च ।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ।।लिंगपाहुड–९।।

अर्थात्– **जो मुनि का लिंग रखकर भी दूसरों के 'विवाह सम्बन्ध' जोड़ता है तथा खेती और व्यापार के द्वारा जीवों का घात करता है वह चूँकि मुनिलिंग के द्वारा इस कुकृत्य को करता है अतः पापी है और नरक जाता है।** (पृष्ठ ६८६)

तत्त्वार्थसूत्र में ब्रह्मचर्यव्रत के अतिचारों में पहला ही अतिचार परविवाहकरण कहा है। (७/२८)

अतः ब्रह्मचर्यव्रत का धारी श्रावक भी अपने आश्रित पुत्र–कन्याओं को छोड़कर दूसरों के विवाह सम्बन्ध नहीं जोड़ता है। तब जो उससे अत्यंत श्रेष्ठ तथा **कृत–कारित–अनुमोदना से अब्रह्म के त्यागी हैं** ऐसे मुनि–आर्यिका–ऐलक–क्षुल्लक–क्षुल्लिका आदि त्यागी दूसरों के विवाह कराने अथवा करवाने जैसा अपने व्रत को नष्ट करने वाला जघन्य कार्य कैसे कर सकते हैं ?

मुनि भी दीक्षा दे सकते हैं ।

प्रश्न – क्या मुनि भी दीक्षा दे सकते हैं ?

समाधान – हाँ। मुनि भी दूसरों को मुनिदीक्षा दे सकते हैं। मुनि प्रशान्तसागर द्वारा लिखित **जिनसरस्वती** नामक पुस्तक में ऐसा प्रश्न उठाकर उसका निम्न प्रकार से समाधान किया गया है। यथा –

प्रश्न ९ – कितने परमेष्ठी दीक्षा देते हैं ?

उत्तर – तीन परमेष्ठी । आचार्य, उपाध्याय, साधु । (पृष्ठ १००) तथा–

प्रश्न १८– आचार्यश्री (विद्यासागर) ने कौनसे परमेष्ठी से मुनिदीक्षा ली थी?

उत्तर – साधु परमेष्ठी से । (पृष्ठ ५८)

शास्त्रों में भी मुनियों के द्वारा दीक्षा दिये जाने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। जैसे वारिषेण मुनि ने अपने मित्र पुष्पड़ाल को मुनिदीक्षा दी थी।

* * * * *

संसारार्णव दुस्तरोऽस्ति निचितैः कर्मैः पुरा प्राणिना
शक्यं नास्त्यपि पारगम्य इति वै भारेण भूत्वा गुरुम् ।

त्यागेनोभयभेदसङ्ग नितरां योऽभूदहो! नौरिव
पापात् पात्वपरिग्रही स सुविधि: तीर्थंकरो निर्मल: ।।

७. पंचम काल में मुनि ?

क्या कहता है आगम ?

प्रश्न – ये कड़वे सच पढ़कर प्रश्न उठता हैं कि क्या इस पंचम काल में भी शास्त्रोक्त आचरण करने वाले भावलिंगी मुनि होते भी हैं ?

समाधान – आचार्य कुन्दकुन्ददेव **अष्टपाहुड** में कहते हैं –

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स ।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ।।मोक्षपाहुड ७६।।

अर्थात् – भरतक्षेत्र में दु:षम नामक पंचम काल में मुनि को धर्म्यध्यान होता है तथा वह धर्म्यध्यान आत्मस्वभाव में स्थित साधु को होता है **ऐसा जो नहीं मानता वह अज्ञानी (मिथ्यादृष्टि) है।** (पृष्ठ ६५१)

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं ।
लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ।।७७।।

अर्थात् – आज भी रत्नत्रयसे शुद्धता को प्राप्त हुए मनुष्य (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से सहित भावलिंगी मुनि) आत्मा का ध्यान कर इन्द्र पद तथा लौकान्तिक देवों के पद को प्राप्त होते हैं और वहाँ से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं ।

विशेषार्थ – **जो कहते है कि इस समय महाव्रती नहीं हैं वे नास्तिक हैं, उन्हें जिनशासन से बाह्य समझना चाहिये ।** (पृष्ठ ६५२)

मैं एक बात पूछता हूँ कि यदि आपको पेट का ऑपरेशन कराना हो तो क्या बिना जाने चाहे जिससे करा लेंगे? डॉक्टर के बारे में पूरी–पूरी तपास करते हैं । डॉक्टर भी जिस काम में माहिर न हो वह काम करने को सहज तैयार नहीं होता ।... पर धर्म का क्षेत्र ऐसा खुला है कि जो चाहे बिना जाने–समझे उपदेश देने को तैयार हो जाता है और उसे सुनने वाले भी मिल जाते है। (धर्म के दसलक्षण – पृष्ठ ११३)

उन अज्ञानियों को पं. रतनचन्द भारिल्ल **चलते फिरते सिद्धों से**

गुरु में सत्य का बोध कराते हैं – **''शास्त्रों के कथनानुसार पंचम काल के अन्त तक भी भावलिंगी मुनि होते रहेंगे । आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार, नियमसार एवं अष्टपाहुड में जो निर्देश दिए हैं, वे सब पंचम काल के मुनियों के लिए ही दिए हैं।''** (पृष्ठ ३४)

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा सम्पादित पं. टोडरमलकृत **आत्मानुशासन टीका** (श्लोक ३३) में कहा है – चिरकालवर्ती महामुनियों के मार्ग पर चलनेवाले शिष्य (मुनि) आज भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । (पृष्ठ ३१) ... **अभी भी मुनिधर्म के धारक कोई–कोई जीव प्रत्यक्ष देखे जाते हैं ।** (पृष्ठ ३२)

श्री वीर निर्वाण कल्याणक दिन (संवत २४६९) के अवसर पर राजकोट में कानजी स्वामी ने कहा था –

साधु, अर्जिका, श्रावक और श्राविका पंचम आरे (पंचम काल) के अंत में भी आत्मा का भान करके एकावतारीपना प्राप्त करेंगे, तो फिर अभी क्यों नहीं हो सकता ? (अर्थात् ये मुनि आदि चारों आज भी हैं ।) (स्वानुभूतिप्रकाश–नवम्बर २००८, पृष्ठ ६)

पंचम काल में हुए मुनि पंचम काल के जीवों को यह बात समझाते हैं । (श्रावकधर्मप्रकाश – पृष्ठ ६५)

इससे स्पष्ट होता है कि इस दु:षम पंचम काल में भी भावलिंगी मुनि होते हैं, और वे अपने छठे/सातवें गुणस्थान के अनुसार शास्त्रोक्त आचरण भी करते हैं । **भले ही उनकी संख्या अल्प हो सकती है परन्तु उनका अभाव नहीं है। इस सत्य की स्वीकृति में महान पुरुषार्थ है ।**

मुनि की पहचान

१००/१ – ?

दिगंबर जैनों के लिए – **बाह्य–अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु है ।** (मोक्षमार्गप्रकाशक – पृष्ठ १३६)

प्रश्न – कोई नग्न मनुष्य मुनि है या नहीं यह कैसे जानना चाहिए?

समाधान – चार बाह्य चिह्नों से मुनि जाने जाते हैं –

(१) आचेलक्य – सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग, (२) केशलोच,
(३) शरीर से निर्मोहता और (४) पीछी ।

इन चार बाह्य चिह्नों से सहित मुनियों के ५ महाव्रत, ५ समितियाँ, ५ इन्द्रियनिरोध, ६ आवश्यक तथा केशलोच, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदंतधावन, स्थितिभोजन और एकभुक्त ये ७ विशेष गुण ऐसे २८ मूलगुण और १२ तप तथा २२ परीषह जय ऐसे ३४ उत्तरगुण होते हैं ।

पं. रतनचन्द भारिल्ल लिखते हैं – **"इन मूलगुणों का निर्दोष पालन ही दिगम्बर मुनिराज की बाह्य पहचान है** । उत्तरगुण भी यथाशक्य पालते ही हैं, **पर उत्तरगुण मुनि की कसौटी नहीं होती** ।" (चलते फिरते सिद्धों से गुरु – पृष्ठ ६३)

पूज्यता का आधार

२८ मूलगुण पालने वाले मुनियों को जाने बिना ही उनकी उपेक्षा और अनादर करनेवाले अज्ञानी लोगों को उनकी भूल का अहसास दिलाते हुए पं. रतनचन्द भारिल्ल समझाते हैं –

मुनिराज २८ मूलगुण एवं १३ प्रकार के चारित्र का निर्दोष पालन करते हैं, अत: वे श्रावकों द्वारा वन्दनीय हैं । यद्यपि मुनि को वन्दन, नमन आदि कराने का भाव ही नहीं, तथापि **जो (ऐसे) सच्चे गुरुओं को वन्दन नहीं करता, उसे गुरु का अवर्णवाद करनेवाला होने से दर्शनमोह (मिथ्यात्व) का बंध होता है**। (चलते फिरते सिद्धों से गुरु – पृष्ठ ७९)

अट्ठाईस मूलगुण आदि सभी गुणों की पूर्णता होने पर भी जो पुरुष यह छल करता है एवं सन्देह करता है कि अमुक मुनिराज को सम्यग्दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शन के बिना उन्हें कैसे नमस्कार किया जाये तो वह मुनित्व से ही इन्कार करनेवाला है; क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि अपने स्थूलज्ञान से किसी के सम्यग्दर्शन का पता लगाया जा सके ।

अत: सम्यग्ज्ञान जैसे अमूर्त अतीन्द्रिय तत्त्व का पता किये बिना मुनिराज को नमस्कार नहीं किया जायेगा तो फिर लोक के सभी साधु वन्दनीय नहीं रह सकेंगे । इसीलिए **मुनिराज में जहाँ जिनोपदिष्ट**

व्यवहारधर्म की परिपूर्णता पायी जाये तो वे अवश्य ही वन्दन के योग्य होते हैं; क्योंकि व्यवहारी की गति व्यवहार तक ही होती है । **कोई कारण न दिखायी देने पर भी किसी के चारित्र के संबंध में सन्देह करना चारित्र का बहुत बड़ा अपमान है ।** (पृष्ठ ८०) इस प्रकार से – तपस्विजनोंके सम्यक् चारित्रमें दूषण लगाना एवं उनकी निन्दा करने से कषायवेदनीय तथा जुगुप्सा के बंध कारण है । (हरिवंशपुराण– ५८/९८,१०४)

जिसको बालबोध एवं सामान्य श्रावकाचार का भी ज्ञान नहीं है, वह भी मुनियों को निकट से देखे–जाने बिना ही धड़ल्ले से उनको द्रव्यलिंगी और चारित्र से रहित कह देता है । अरे – सच्चा साधु होना तो सिद्ध होने जैसा गौरव है । इस गरिमायुक्त महान पद के साथ खिलवाड़ करना अपने जीवन और जगत के साथ खिलवाड़ करना है । ऐसा करनेवाला व्यक्ति वात्सल्य, उपगूहन और स्थितिकरण तो दूर, अपने प्राथमिक कर्तव्य को भी निश्चय से नहीं जानता है । क्योंकि भावों की
?
स्थिति केवलीगम्य ही हुवा करती है । **बाहर से तो द्रव्यलिंग ही दिखता है और बाह्य चर्या भी दिखती है, उसी के अनुरूप पूज्यता–पूजा की व्यवस्था चलती है ।** (प्रवचन निर्देशिका – पृष्ठ १६०)

उन साधुओं को किसी से नमस्कार कराने की अपेक्षा नहीं होती, परन्तु मोक्ष की प्राप्ति के लिये मुमुक्षुओं के द्वारा वे स्वयं ही नमस्कार करने योग्य होते हैं, मोक्षार्थी उन्हें स्वयं ही वन्दना करते हैं । (चलते फिरते सिद्धों से गुरु – पृष्ठ ४०) क्योंकि **अष्टपाहुड** में कहा है –

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं ।
जे गारवं करंति य सम्मत्त विवज्जया होंति ।।दर्शनपाहुड २५।।

अर्थात् – जो देवों से वंदित तथा शील से सहित तीर्थंकर परमदेव के (द्वारा आचरित मुनियों के नग्न) रूप को देखकर गर्व करते हैं (उनको प्रणाम आदि नहीं करते हैं) वे सम्यक्त्व से रहित (मिथ्यादृष्टि) हैं । (पृष्ठ ४३–४४)

इसलिए कानजी स्वामी स्पष्ट शब्दों में कहते थे – **जो निर्ग्रन्थ गुरुओं को नहीं मानता, उनकी पहचान और उपासना नहीं करता, उसको तो सूर्य उगे हुए भी अन्धकार है ।** (जिनपूजन रहस्य – पृष्ठ ५२)

इसलिए पं. रतनचन्द भारिल्ल कहते हैं – **पूज्यता का आधार तो बाहर में २८ मूलगुणों का निर्दोष पालन करना ही मुख्य है । अत: जो भी २८ मूलगुणों का निर्दोष पालन करते हैं; वे सब पूज्य हैं ।** अन्दर के परिणामों की पहचान तो सर्वज्ञ के सिवाय किसी को होती नहीं है; अत: 'द्रव्यलिंग' शब्द को निन्दा के अर्थ में नहीं समझना चाहिए। (चलते फिरते सिद्धों से गुरु – पृष्ठ ८१)

अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि (द्रव्यलिंगी और) भावलिंगी मुनि का निर्णय हम–आप जैसे अल्पज्ञ जनों से परे है । **हमें तो मुनि के द्रव्य वेष और बाह्य आचरण को देखकर ही मुनिमुद्रा को पूज्य मानकर उनका यथोचित सत्कार करना चाहिये ।** (प्रवचन निर्देशिका – पृष्ठ १६१)

द्रव्यलिंगी से व्यवहार

द्रव्यलिंगी और मिथ्यादृष्टि पर्यायवाची नहीं है । इनमें बहुत अन्तर है। **द्रव्यलिंग तो जीव की अणुव्रत–महाव्रतादि रूप बाह्यक्रिया है, जो व्यवहार चारित्र होने से व्यवहार से पूज्य है** और मिथ्यात्व तो जीव की विपरीत मान्यता होने से निन्द्य है, त्याज्य है । अत: 'द्रव्यलिंगी अर्थात् मिथ्यादृष्टि' यह भ्रान्ति नहीं रखना चाहिए । (क्रिया, परिणाम और अभिप्राय – पृष्ठ ७४–७५) क्योंकि **चरणानुयोग में बाह्यक्रिया की प्रधानता होने से – ''भावलिंग रहित द्रव्यलिंग'' भी वन्दनीय कहा गया है ।** (पृष्ठ ७७)

पण्डित टोडरमल ने स्वयं (मोक्षमार्ग प्रकाशक के) आठवे अधिकार के चरणानुयोग प्रकरण में द्रव्यलिंगी को सम्यग्दृष्टि द्वारा वन्दनीय कहा है । (पृष्ठ ८९) उनका मूल कथन निम्न प्रकार हैं–

यहाँ कोई प्रश्न करे – सम्यक्त्वी तो द्रव्यलिंगीको अपने से

हीनगुणयुक्त मानता है, उस (द्रव्यलिंगी) की भक्ति कैसे करे ?

समाधान – व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीके बहुत है और भक्ति करना भी व्यवहार ही है । इसलिये जैसे – कोई धनवान हो परन्तु जो कुलमें बड़ा हो उसे कुल की अपेक्षा से बड़ा जानकर उसका सत्कार करता है; उसी प्रकार **आप सम्यक्त्व गुणसहित है, परन्तु जो व्यवहारधर्ममें प्रधान हो उसे व्यवहारधर्मकी अपेक्षा गुणाधिक मानकर उसकी भक्ति करता है,** ऐसा जानना । (मोक्षमार्गप्रकाशक – पृष्ठ २८३–२८४)

प्रश्न – ऐसे द्रव्यलिंगी मुनिराज के साथ **सच्चे** श्रावक को कैसा व्यवहार रखना चाहिए?

उत्तर – **यदि अट्ठाईस मूलगुणों का आचरण आगमानुकूल हो तो द्रव्यलिंगी मुनिराज के लिए क्षायिक सम्यग्दृष्टि तथा पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक नमस्कारादि विनय व्यवहार तथा आहारदान आदि क्रियायें हार्दिक परिणामों से करे**; क्योंकि नमस्कार आदि व्यवहार है और मुनिराज का व्रत पालन भी व्यवहार है । सूक्ष्म अंतरंग परिणामों का पता लग भी नहीं सकता क्योंकि वे तो केवलज्ञानगम्य होते हैं । **व्यवहारी जनों के लिए द्रव्यलिंगी भी पूज्य हैं ।** (गुणस्थान विवेचन – पृष्ठ ८१) ब्र. यशपाल जैन का यह अभिप्राय सब के लिए मार्गदर्शक है । क्योंकि– चरणानुयोग के भी नियम होते हैं, उनको जानकर विवेकपूर्ण आचरण रखना योग्य है, नहीं तो मिथ्यात्व का दोष लगता है । (सर्वज्ञप्रणीत जैन भूगोल – पृष्ठ ६७)

निष्कर्ष –जिनको 'चलते फिरते सिद्धों से गुरु' कहा जाता हैं ऐसे **वर्तमान के जो मुनि '२८ मूलगुणों का शास्त्रानुसार पालन करते हैं', वे यदि 'भावलिंग रहित' भी हो तब भी वन्दनीय हैं इस सत्य की खोज करने के बाद भी यदि क्रिया, परिणाम और अभिप्राय में तालमेल नहीं होगा तो इन भावों का फल क्या होगा यह विचार करके सत्य का स्वीकार करना चाहिये ।** क्योंकि न्याय का विनय होना ही

श्रेयस्कर है । चाहे सारा विश्व विरुद्ध हो जाए, न्यायपथ से ज्ञानी नहीं डिगते हैं । (अंतर-शोधन – पृष्ठ ७२) यही सत्य की खोज करने का यथार्थ फल है ।

प्रश्न – परन्तु कभी-कभी किसी मुनि के मूलगुणों में भी दोष लगता हैं ऐसे मुनि को कैसे सच्चे मुनि माने?

समाधान – ब्र. यशपाल जैन **गुणस्थान विवेचन** में कहते हैं- जो उत्तरगुणों की भावना से रहित हो और किसी क्षेत्र या काल में किसी मूलगुण में अतीचार लगावें तथा जिनके अल्प विशुद्धता हो उन्हें पुलाक मुनि कहते हैं ।

पुलाक मुनि वैसे तो भावलिंगी मुनिराज ही होते हैं परन्तु व्रतों के पालन में क्षणिक अल्पदोष हो जाते हैं; फिर भी यथाजातरूप ही हैं । (पृष्ठ १५९)

(दीक्षा लेते ही) चारित्र की शुद्धता एकसाथ प्रगट नहीं हो जाती किन्तु क्रमशः प्रगट होती है । (मोक्षमार्ग की पूर्णता – पृष्ठ ९४) भावलिंगी मुनिराज भूमिका के योग्य (संज्वलन) क्रोधादि कषाय रूप परिणत होते हुए भी उनका भावलिंगपना (मुनिपद) सुरक्षित रहता है । (पृष्ठ १०६)

शंका – परन्तु यदि कोई मुनि भूमिका के अयोग्य प्रत्याख्यानावरणादि कषाय रूप परिणत हो जाये तब तो उनका मुनिपद छुटेगा या नहीं?

समाधान – हाँ! उतने काल तक उनका भावलिंग छुटता है परन्तु...

''मोहोदय से अबुद्धिपूर्वक श्रद्धा तथा चारित्र गुणों के परिणमन में विपरीतता आ गयी है । परिणामों की शिथिलता से गुणस्थान गिर गया है। तत्काल वे अपने को बुद्धिपूर्वक संभालने का प्रयास करते हैं । दूसरों को किंचित् मात्र पता भी न चल पावे, इतने में ही वे पुनः सातवे गुणस्थान में भी प्रविष्ट होकर पूर्व अनुभूत आत्मानन्द का रसास्वादन भी करने लगते हैं ।'' (गुणस्थान विवेचन – पृष्ठ ८२) अर्थात् तत्काल पुनः भावलिंग को पुनः प्राप्त कर लेते हैं । अतः **देव-शास्त्र-गुरु पूजन** की जयमाला में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने जो भावना प्रकट की है उसके अनुसार –

जिनवाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना हैं ।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना हैं ।।

फिर भी आप चाहो तो कानजी स्वामी के अनुसार ''परिक्षा तो करना, परन्तु जिन-आज्ञा को मुख्य रखकर करना । सर्वज्ञ की आज्ञा मानकर परीक्षा करना; अकेली परीक्षा करने जाओगे तो भ्रष्ट हो जाओगे । (ज्ञान-गोष्ठी – पृष्ठ ३२)

गृहस्थ का कर्तव्य

२८ मूलगुणों का पालन करने वाले इन मुनियों के प्रति गृहस्थों के कर्तव्य का सम्यग्बोध कराते हुए पं. रतनचन्द भारिल्ल कहते हैं –

''जब-जब मुनियों की आहार चर्या हेतु नगर में आने की संभावना होती है, तब-तब गृहस्थ स्वयं के लिए भी ऐसा शुद्ध आहार बनाकर तैयार रखते हैं, जो मुनियों के योग्य हो और मुनियों के आहार हेतु आगमन के काल तक द्वार प्रेक्षण करते हैं, अर्थात् मुनियों के आने की प्रतीक्षा करते हैं।'' (चलते फिरते सिद्धों से गुरु – पृष्ठ ४८)

''मुनि सहज भाव बिना किसी पूर्वसूचना के मुद्रिका बाँधे द्वार पर आयें तो गृहस्थ उनका नवधा भक्ति पूर्वक पड़गाहन करके आहार हेतु आह्वानन करते हैं तथा उन्हें आहार कराकर स्वयं भोजन करते हैं।'' (पृष्ठ ४८-४९)

परमात्मप्रकाश (टीका) में कहा है – आहारदानादिक ही गृहस्थों का परम धर्म है । (२/१११*४, पृष्ठ २३१) क्योंकि सत्पात्रदान (आहारदान) के प्रसंगसे अन्तरमें स्वयंकी धर्मकी प्रीति पुष्ट होती है । **अतः हे भाई! पात्रदान की महिमा जानकर तू तेरी लक्ष्मी का सदुपयोग कर ।** (श्रावकधर्मप्रकाश – पृष्ठ ८८)

पं. टोडरमल ने कहा हैं – सच्चे धर्मकी तो यह आम्नाय है कि जितने अपने रागादि दूर हुए हों, उसके अनुसार जिस पदमें जो धर्मक्रिया संभव हो वह सब अंगीकार करें । (मोक्षमार्गप्रकाशक – पृष्ठ २४०)

इसलिए धर्मके प्रेमी जीव भोजनादि सर्व प्रसंगमें प्रेमपूर्वक धर्मात्माको याद करते हैं कि मेरे आँगनमें कोई धर्मात्मा अथवा कोई मुनिराज पधारे तो उनको भक्तिपूर्वक भोजन देकर मैं भोजन करूँ । भरत चक्रवर्ती जैसे धर्मात्मा भी भोजनके समय रास्ते पर आकर मुनिराजके

आगमनकी प्रतीक्षा करते थे, और मुनिराजके पधारने पर परम भक्तिपूर्वक आहारदान करते थे । (कानजी स्वामीकृत प्रवचन–श्रावकधर्मप्रकाश – पृष्ठ ४५–४६) धर्म, धर्मी जीवके आधारसे है इसलिए जिसे धर्मी जीवोंके प्रति प्रेम नहीं, उसे धर्मका प्रेम नहीं । (पृष्ठ ५०)

धनवान् अर्थात् जिसने अभी परिग्रह नहीं छोड़ा ऐसे श्रावक का मुख्य कार्य सत्पात्रदान है । (श्रावकधर्मप्रकाश – पृष्ठ ४८) इसलिए मुनिराजको अथवा धर्मात्माको अपने आँगनमें भक्तिसे आहारदान करना उस (गृहस्थ) का प्रधान कर्तव्य कहा गया है । (कानजी स्वामीकृत प्रवचन–श्रावकधर्मप्रकाश – पृष्ठ ५२)

मुनिराज को देखकर सम्यग्दृष्टि श्रावक का मनमयूर भावविभोर होकर विचार करता है – **अहो धन्य ये सन्त ! धन्य आज का दिन कि मेरे आँगन में मोक्षमार्गी मुनिराज पधारे । आज तो जीता–जागता मोक्षमार्ग मेरे आँगन में आया । अहो ! धन्य यह मोक्षमार्ग ! ऐसे मोक्षमार्गी मुनि को देखते ही गृहस्थ को ऐसे भाव आते हैं कि अहो ! रत्नत्रय को साधनेवाले इन मुनि को शरीर की अनुकूलता रहे ऐसा आहार–औषध देऊँ जिससे ये रत्नत्रय को निर्विघ्न साधे ।** (कानजी स्वामी – श्रावकधर्मप्रकाश – पृष्ठ ५४–५५)

जिस दिन मुनिके आहारदानका प्रसंग अपने आँगनमें हो उस दिन उस श्रावकके आनन्दका पार नहीं होता । श्रीराम और सीता जैसे भी जंगलमें मुनियोंको भक्तिसे आहारदान करते हैं । (पृष्ठ ५५) दूसरी ओर वर्तमान के नगरवासी सब साधन–सुविधाओं के होते हुए भी अनेक निरर्थक बहाने बनाकर आहारदान करने से दूर रहते हैं ।

इसलिए आ. सुविधिसागर कहते हैं – **मुनियों की दो–चार जयकार क्या बोल दी, हो गई तुम्हारे कर्तव्य की इतिश्री । नमस्कार किया और चल दिए । तुमने केवल स्वांग रचे हैं भक्ति के ।** (ऐ बे–लगाम के घोड़े! सावधान – पृष्ठ ६९) हमारा संघ यहाँ आया है, समाज के कितने लोगों ने चौके लगाए? (धर्ममंगल (मई २०११) – पृष्ठ १५) अरे ! **अतिथिसत्कार (आहारदान) से विमुख होना सबसे**

बड़ी दरिद्रता है । (सुविधि वचन पराग – अक्षय ज्योति (जूलाई–सितंबर २००४) – पृष्ठ ४०)

दानशासन में कहा है – किसी उत्तम पात्र – साधुके अपने नगरमें आने पर यदि आहारदान देना नहीं हो तो लोग बहाना करते हैं कि आज हमारे घरमें कोई बीमार है, (बच्चों की परिक्षाएँ चल रही हैं, सास अथवा बहु दूसरे गाँव गई है, हमारे घर मेहमान आये हुए हैं आदि कारणों से) आज आहार नहीं बनाया जा सकता है इत्यादि । आचार्य कहते हैं कि **पात्रदानमें इस प्रकार बहानाबाजी ठीक नहीं है । साधुओंका सदा संतर्पण (पड़गाहन) करना चाहिये । यही सत्पुरुषोंका कर्तव्य है ।** (८/५२, पृष्ठ १९४)

दान के अभाव में ...

गोम्मटसार कर्मकाण्ड–गाथा ८०१ के अनुसार – जो मनुष्य समर्थ होकर भी प्रतिदिन दान करने का उद्यम नहीं करता है उसे अनेक दु:ख और दारिद्र्य का संयोग करने वाले असातावेदनीय कर्म प्रचुर मात्रा में बन्धते हैं । (पृष्ठ ६८७) इसलिए **सुभाषित रत्नावली** में कहा है –

वरं दरिद्रं न च दानहीनं... ।।१८३।।

अर्थात् – दरिद्री रहना अच्छा है किन्तु दानहीन होकर जीना अच्छा नहीं है ।

भिक्षा–भोजन से बुरा, वह है अधिक जघन्य ।
एकाकी जिस अन्न को, खाता कृपण अधन्य ।।
अतिथि–भक्ति करता नहीं, होकर वैभव नाथ ।
पूर्ण दरिद्री सत्य वह, मूर्ख–शिरोमणि साथ ।।

कहा भी है – दान के योग्य संपत्ति के होने पर तथा पात्र (मुनि) के भी अपने गृहके समीप आ जानेपर जिस मनुष्य की बुद्धि दान करने के लिए उत्साह को प्राप्त नहीं होती है, वह दुर्बुद्धि खानिमें प्राप्त हुए अतिशय मूल्यवान् रत्नको छोड़कर पृथिवि के तलभाग को व्यर्थ खोदता है । (पद्मनन्दि पञ्चविंशति:–२/३४, पृष्ठ ८७) अर्थात् उसकी संपत्ति व्यर्थ है ।

अपने कर्म के अनुसार कुत्ता भी अपने उदर को पूर्ण करता है और राजा भी अपने उदर को पूर्ण करता है । परन्तु प्रशंसनीय मनुष्यभव, धन एवं

विवेक बुद्धि को प्राप्त करने का यहाँ यही प्रयोजन है कि निरन्तर पात्रदान दिया जावे । (पद्मनन्दि पञ्चविंशतिः-२/४१, पृष्ठ ८९)

सन १९३३ में आ. शान्तिसागर महाराज ने ब्यावर में वर्षायोग किया था । उस समय रायबहादुर सेठ टीकमचन्दजी सोनी गुरुभक्ति से आकर्षित होकर **प्रतिदिन** अजमेर से ब्यावर आकर आहार की विधि लगाते थे । आहार के उपरांत वे प्रतिदिन स्वधाम को वापिस जाते थे । ऐसी गुरुभक्ति करने वाले विरले ही भाग्यवान् होते हैं । (चारित्र चक्रवर्ती - पृष्ठ २७९)

अहो ! पुण्यात्मा जन जिसके लिये दूसरे देशमें जाकर दान देते हैं, संयम के आश्रयभूत उस पात्रके स्वयं ही घर आ जानेपर तथा बहुत धनके रहनेपर भी जो मूर्ख दान नहीं देता, वह दुर्बुद्धि मनुष्य स्वयं अपने आपको ठगता है-दुर्गतिमें डालता है । (सुभाषितरत्नसंदोह-१९/१८,पृष्ठ १४१-१४२)

जो गृहस्थ तपस्वियों के लिए प्रासुक दान नहीं देता है उसका अपना पेट भरनेवाले पशु से निश्चयत: कोई भेद नहीं है। ... जो गृहस्थ स्वयं घर आये हुए तपोधन साधु को भक्ति से पड़गाहता नहीं है वह कुबुद्धि हाथ में आये हुए चिन्तामणि रत्न को निश्चय से छोड़ता है। **जो गृहस्थ भूख लगने के पूर्व साधुओं की आहार की वेला में उनके आगमन की प्रतीक्षा करता है, वह साधुओं का लाभ नहीं होने पर भी पुण्य से संयुक्त होता है।** (अमितगति श्रावकाचार-९/२१,२७,३०)

इसका अभिप्राय यह है कि पड़गाहन करनेवाले सभी श्रावकों को आहारदान करने का फल प्राप्त होता है; साधु उनके चौके में आये अथवा नहीं भी आये, तब भी ।

तो भी कोई अज्ञानी, मूर्ख, कुबुद्धि, अपघाती ऐसा फल जानकर भी दान नहीं करता तो उसके लोभ की व अज्ञान की क्या पूँछना ? (ज्ञानानन्द श्रावकाचार - पृष्ठ ३८)

एक प्रेरक घटना है - सन १९५४ के (जयपुर) चातुर्मास में लगभग सौ चौके लग रहे थे । आहार के समय दीवान जी के मन्दिर से मील, दो मील तक चौके लग रहे थे । श्रावकों की भक्ति बहुत ही विशेष थी ।

इसी संदर्भ में एक दिन किसी मंदिर में एक मीटिंग हुई जिसमें ऐसी चर्चा चली कि - ''यहाँ आचार्य देशभूषण जी महाराज का चातुर्मास होने से लगभग १०० चौके लग रहे हैं। संघ में साधु तो चार ही हैं - एक आचार्य महाराज, एक क्षुल्लक जी और दो क्षुल्लिकाएं । ये चार घर में ही पहुँचते हैं । शेष लोगों के यहाँ फिजूल खर्च हो रहा है । पूरे चातुर्मास में इस तरह यह व्यर्थ का खर्च हो जायेगा । अतः यदि सभी चौके बंद करा दिये जायें और तीन चार ही चौके लगें तो क्या बाधा हैं? यह फिजूलखर्ची के पैसे बचाकर किसी अन्य कार्य में क्यों न लगा दिये जायें? इत्यादि ।''

यह चर्चा मुनिभक्त विद्वानों के समक्ष आई । तब उन्होंने भी आपस में मीटिंग कर यह जवाब दिया कि- ''हम लोग आहारदान की भावना से शुद्ध चौका बनाते हैं । १० बजे अपने-अपने घर के बाहर खड़े होकर महाराज का पड़गाहन करने से तो हमें आहारदान का पुण्य मिल ही जाता है जो कि एक रुपया के हिसाब से व्यर्थ खर्च नहीं है । प्रत्युत् महान पुण्य बंध का कारण है तथा प्रतिदिन हम लोगों का पता नहीं कितने रुपये का फिजूल खर्च गृहस्थाश्रम में होता ही रहता है -इत्यादि ।'' (मेरी स्मृतियाँ - पृष्ठ ३६)

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा है -

गृहमागताय गुणिने मधुकरवृत्त्या परानपीडयते ।
वितरति यो नातिथये स कथं न लोभवान् भवति ।।१७३।।

अर्थात् - **अपने घर के सामने आये हुए रत्नत्रय गुणधारी एवं भ्रमरसमान वृत्ति से दुसरों पर बोझ बने बिना आहार करनेवाले अतिथि मुनि को जो आहारादि दान नहीं करता है, निश्चय से वह लोभी क्यों नहीं है? अर्थात् घर के सामने आये हुए मुनि का पड़गाहन नहीं करने वाला मनुष्य निश्चय से लोभी ही है।**

यदि कोई गृहस्थ संसार सागर से पार कराने वाले त्यागियों को अपने घर में आहार दिये बिना वापस भेजेगा तो वह संसार से कैसे पार हो सकता है? अर्थात् वह संसार से पार नहीं हो सकता । (धर्ममार्गसार -१७४, पृष्ठ १५८)

इस संसार में धन प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है । जिनके पास धन

हो, उनमें दान करने की भावना उत्पन्न होना उससे भी कठिन है । दान करने की इच्छा हो और सत्पात्र का समागम हो जाये यह संयोग तो महादुर्लभ है । जिन जीवों को ऐसे सुअवसर प्राप्त होते हैं फिर भी वे दान में प्रवृत्ति न करें तो उनका धन व्यर्थ ही है । (सज्जनचित्तवल्लभ – पृष्ठ ३८)

इसलिए **भावसंग्रह** में कहा है –

जह जह वड्ढइ लच्छी   तह तह दाणाइं देह पत्तेसु ।
अहवा हीयइ जह जह देह विसेसेण तह तह य ।।५६८।।

अर्थात् – जैसे जैसे धन की वृद्धि हो, वैसे वैसे सत्पात्रों के लिए दिये जानेवाले दान में भी वृद्धि करते जाना चाहिए अथवा जैसे जैसे धन की हानि हो वैसे वैसे विशेष दान देना चाहिए ।

जेहिं ण दिण्णं दाणं ण चावि पुज्जा किया जिणिंदस्स ।
ते हीणदीणदुग्ग य भिक्खं ण लहंति जायंता ।। ५६९ ।।

अर्थ : जिन्होंने सत्पात्रों को दान नहीं दिया, जिनदेव की पूजा नहीं की, वे अगले जन्म में हीन, दीन, दरिद्री होते हैं । उनकी इतनी दुर्दशा होती है कि माँगने पर भी उनको भीख तक नहीं मिलती ।

कुलीन मनुष्य अपने घर पर आये हुए शत्रु को भी आसन, मधुर वचन और शक्ति के अनुसार भोजन–पान देकर उसका सत्कार करते हैं। तब ऐसा कौन **मूढ़बुद्धि** होगा जो भोजन के समय पर अपने द्वार पर आये हुए मुनि का पड़गाहन नहीं करेगा ? इसलिए **कुरल काव्य** में कहा है – जब पुण्ययोग से घर के द्वार पर अतिथि हो, तब चाहे अमृत ही क्यों न हो, फिर भी उसे अकेले नहीं पीना चाहिये अर्थात् उसे **पहले अतिथि को देकर ही फिर स्वयं सेवन करना चाहिये** । (९/२)

इससे विपरीत जो श्रावक मुनीश्वरों को भक्तिपूर्वक आहारदान नहीं देंगे, जिनेन्द्रपूजा नहीं करेंगे, पंचपरमेष्ठियों को वंदन नहीं करेंगे, उनको मोक्षपद की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? अर्थात् उनको मोक्ष मिल ही नहीं सकता । (जिनेंद्र पूजेचे स्वरूप – पृष्ठ ३४–३५ (हिंदी अनुवाद))

घर या श्मशान ?

मुनिराजों को आहार देना तो समाज का अहोभाग्य है, कर्तव्य है।

(सर्वज्ञप्रणीत जैन भूगोल – पृष्ठ १६६) इसलिए – **सम्यग्दृष्टि हो, जैन हो और उसे साधु को आहार देने का परिणाम न आये । यह असम्भव ! असम्भव ! असम्भव ! आकाश के तारे नीचे आ सकते हैं, नरक उपर जा सकते हैं, स्वर्ग नीचे आ सकते हैं लेकिन कभी सम्यग्दृष्टि जैन के अन्दर यह परिणाम नहीं आ सकता कि मैं साधु को आहार न दूँ और जिसके अन्दर ऐसा परिणाम आये तो पक्का समझ लेना कि वह जैन है ही नहीं, केवल नाम मात्र का जैन है या वह बनिया (बहुरूपिया) है ।** (नग्नत्व क्यों और कैसे – पृष्ठ ६)

अतः संयमी मुनि को देखकर जिसके ह्रदय में हर्ष उत्पन्न न हो, उन्हें आहारदान देने की इच्छा उत्पन्न न हो, वह मिथ्यादृष्टि ही है यह निश्चय करना चाहिए ।

पद्मपुराण में कहा है **– जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहार के समय आये हुए अतिथि का अपने सामर्थ्य के अनुसार सन्मान नहीं करता है – उसे आहार नहीं देता है उसके धर्म नहीं है।** (पद्मपुराण–२५/११२, भाग २ – पृष्ठ १४०)

इसलिए कानजी स्वामी कहते थे – **जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव–शास्त्र–गुरु के दर्शन–पूजन होते हैं, मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है, वह घर धन्य है और उसके बिना घर तो श्मशान–तुल्य हैं।** (श्रावकधर्मप्रकाश – पृष्ठ १०१)

इसलिए यदि अपने यहाँ शुद्ध घी, बूरा व दूध आदि पदार्थ न हो, और **संयमी व्रती का लाभ हो जावे तो निःसंकोच भावसे इनके बिना रुखा–सुखा (ही सही) परन्तु ऐसा शुद्ध भोजन जो सहज साध्य हो, वह व्रती जनों को देकर उनके दर्शन, ज्ञान व चारित्र की वृद्धि में सहाय्यक होना चाहिए** । इन पदार्थों की उपलब्धि न हो तो भी **भूलकर भी पात्रदान के लाभ से वंचित नहीं रहना चाहिए।** (सामान्य जैनाचार विचार – पृष्ठ ११७) बल्कि यह विचार करे कि मैं तो गृहस्थ हूँ । मुझे नित्य उत्तम–मध्यम–जघन्य पात्रों को दान देने का सुअवसर मिलता रहे, जिससे यह धन पाना भी सफल हो । (पृष्ठ १२८)

अहो! केवल आहारदानको देनेवाला मानव जो फल प्राप्त करता हैं, वह कोटि सुवर्णके दानसे भी नियमतः कदाचित् भी प्राप्त नहीं होता है। (अमितगति श्रावकाचार–११/२३)

अतः भाग्यशाली श्रावक लोग आहार देने के सौभाग्य के लिए बड़ा श्रम करते हैं । आहारदान का सौभाग्य उनके लिए रत्नराशि से बढ़कर है।

आ. विद्यासागर **तोता क्यों रोता?** इस कविता में कहते हैं–

हे आर्य !
दान देना
दाता का कार्य है
प्रतिदिन अनिवार्य है ।
यथाशक्ति,
तथाभक्ति !
मान–सन्मान के साथ
पाप को पुण्य में
ढालना है न !
(कविता संग्रह – तोता क्यों रोता ?)

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में इसका कारण कहा है –

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम् ।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ।।११४।।

अर्थात् – निश्चय से जिस प्रकार जल रक्त को धो देता है उसी प्रकार गृहरहित–निर्ग्रन्थ मुनियों के लिए दिया हुआ आहार आदि दान गृहस्थी संबंधी कार्यों से उपार्जित पापकर्मों को भी नष्ट करता है ।

दानसंबंधित ऐसे उपदेशों के द्वारा आचार्यश्री (आदिसागर अंकलीकर) गृहस्थों को नित्य कर्म के प्रति प्रेरित करते थे (अक्षय ज्योति (जूलाई–सितंबर/२००४) – पृष्ठ २४)

दान में सावधानी

पापों को नाश करने वाली इस पवित्र आहारदान विधि में वर्तमान में कुछ कुप्रथाओं से मलिनता उत्पन्न हुई है । अनेक स्थानों में मन्दिर/क्षेत्र

के धन से, आहारदान फंड वा चन्दा इकठ्ठा करके अथवा सामूहिक चौका लगाया जा रहा है । यह पद्धति आगमानुकूल नहीं है ।

तत्त्वार्थसूत्र के **अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ।७/३८।** इस सूत्र की टीका करते हुए आ. विद्यानन्दि कहते हैं – दूसरे के धन (द्रव्य) को देना तो दान नहीं है क्योंकि आ. उमास्वामी ने दान के लक्षण में अपने धन (द्रव्य) का परित्याग करना ऐसा निरूपण किया है । (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार–७/३८/१, पुस्तक ६ – पृष्ठ ६५०)

इस कथन के अनुरूप ही गणिनी आर्यिका ज्ञानमती के जीवन का एक संकल्प प्रारंभ से रहा है कि '**आहार में कभी संस्था के दान का एक पैसा भी नहीं लगना चाहिए और न ही साधु को अपने आहार के लिए श्रावकों से कहना चाहिए ।**' (चारित्र चन्द्रिका – पृष्ठ ४१)

यशस्तिलक चम्पू में भी कहा है – मुनिको ऐसा भोजन नहीं देना चाहिए... जो भेंटसे आया हो । (अर्थात् किसी और व्यक्ति ने मुनियों को देने के लिए दिया हो ।) (उत्तरखण्ड – ७४९, पृष्ठ २६४)
जि. स. १/१४७ ?

इसलिए आहारदान मन्दिर, पंचायत वा मुनिसंघ सेवा समिति आदि के द्रव्य से अथवा आहारदान फंड वा चन्दा एकत्रित करके अथवा दो–चार लोग मिलकर सामूहिक चौका लगाकर नहीं अपितु अपने वैयक्तिक द्रव्य से ही करना चाहिए ।

वह आहारदान भी नौकरों के अथवा किसी अन्य के द्वारा नहीं कराकर परिवारजनों के साथ स्वयं अपने हाथों से ही करना चाहिए । **आलस, प्रमाद अथवा व्यस्तता के कारण स्वतः दान नहीं करके दूसरे से करवाना यह परव्यपदेश नामक अतिचार है ।**

परव्यपदेश का अर्थ है – अपनी वस्तु दूसरे से दान में दिलवाना अथवा दूसरे दातार की वस्तु स्वयं दान में देना । (तीर्थंकर बनने का मन्त्र – पृष्ठ ३५) **वर्तमानकालमें श्रावकजन फल आदि वस्तु या रुपया दूसरे श्रावकों को दे देते हैं । इस अभिप्राय से कि वे वह वस्तु या उस धनसे द्रव्य खरीद कर मुनियों को आहारदानमें दे दें । यह**

पद्धति सदोष है । दाता यदि ऐसे द्रव्यका दान देता है, तो यह परव्यपदेश दोष है । (श्रावकधर्मप्रदीप – पृष्ठ १९५)

कहा भी है – दूसरे दाता के देय द्रव्य का अर्पण कर देना अर्थात दूसरे के पदार्थ लेकर स्वयं दे देना (जैसे – **वर्तमान में जो चौका लगाता है, अनेक लोग उसके चौके में सब्जियाँ, फल, दूध, घी आदि लाकर देते हैं और चौकेवाला व्यक्ति अथवा दूसरे लोग आहार देते हैं।) अथवा मुझे कुछ कार्य है, तू दान कर देना, यह परव्यपदेश है ।** अथवा यहाँ दूसरे दाता विद्यमान हैं, मैं (अकेला ही) यहाँ दाता नहीं हूँ अर्थात् आहारदान देनेवाले यहाँ दूसरे लोग भी तो हैं, मैं ही क्यों करूँ ? यह कह देना भी परव्यपदेश हो सकता है । (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार–७/३६, पुस्तक ६ – पृष्ठ ६४६)

तोता क्यों रोता? में कहा है –

पर पदार्थ को लेकर
पर पर उपकार करना
दान का नाटक है,
चोरी का दोष आता है ।

इस विषय में गणिनी आर्यिका ज्ञानमती का उदाहरण मार्गदर्शक है – उनकी आहार व्यवस्था एवं संघ व्यवस्था में कभी किसी कमेटी का, मंदिर के दान का, चन्दे से इकट्ठा किया हुआ पैसा नहीं लिया जा सकता है ऐसा उनका कट्टर नियम है। (चारित्र चन्द्रिका – पृष्ठ १५७)

धनलाभ या किसी प्रयोजन सिद्धि की अपेक्षा से द्रव्यादिक के उपार्जन को नहीं त्यागता संता (आहारदान करने का) योग्य हो रहा भी दूसरे के हाथ से दान दिलाता है इस कारण यह परव्यपदेश महान् अतिचार है । जो कार्य स्वयं किया जा सकता है, किसी रोग, सूतक, पातक आदि का प्रतिबन्ध नहीं होते हुए भी उसको दूसरों से कराते फिरना अनुचित है । (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार–७/३६, पुस्तक ६ – पृष्ठ ६४६)

अथवा स्वयं आहार न देकर नौकर–चाकरों से दिलाना (तथा नौकरों से बनवाकर स्वयं देना) यह अनादर नामक अतिचार का ही

रूपान्तर है । (रत्नकरण्ड श्रावकाचार–१२१, पृष्ठ २२१) इसलिए (चौका अथवा) भोजन बनाने के लिये नौकर मत रखना । (कुछ तो है – पृष्ठ २३०)

दानशासन में कहा है – दासीके (अथवा नौकरोंके) हाथसे दिलाया हुआ आहार दाताके लिये दोषकारक ही है । (६/१३, पृष्ठ १३०)

प्रबोधसार में कहा है – जो दान नौकर–चाकरों के हाथसे दिलाया जाता है वह तामस दान कहलाता है । (३/५१, पृष्ठ २०५)

यशस्तिलक चम्पू में कहा है – जो कार्य दूसरों से कराने लायक हैं, या जो भाग्यवश हो जाते हैं उनको छोड़कर (आहारदान, साधु के साथ विहार, देवपूजा आदि) धर्म के कार्य, स्वामी की सेवा और सन्तान की उत्पत्ति को कौन समझदार मनुष्य दूसरें के हाथ सौपता है ? जो अपना धन देकर दूसरों के द्वारा धर्म कराता है, वह उसका फल दूसरों के लिए ही उपार्जित करता है इसमें सन्देह नहीं है । (उत्तरखण्ड ७५५–५६)

मूलाचार प्रदीप–४४० के अनुसार – दास–दासी अर्थात् नौकरों से दिलाया हुआ आहार ग्रहण करने से वह मुनि भी दायक दोष से दूषित हो जाता है । (पृष्ठ ६८) अत: मुनियों को भी नौकरों के हाथ से दिलाया जानेवाला आहार ग्रहण नहीं करना चाहिये ।

कौन कब दे?

वर्तमान में और एक बहुत बड़ा दोष सर्वत्र हो रहा है– **पंचायत वा आहार समिति के द्वारा श्रावकों को चौका लगाने के लिए दिवस नियत किये जा रहे हैं । यह पद्धति भी आगमविरुद्ध ही है ।** कई जगह पंचायत द्वारा चौके लगाने की क्रमवार सूचि बनाई जाती है । उस सूचि के अनुसार गृहस्थों को नियत दिन चौके लगाने ही पड़ते हैं अन्यथा उन्हें दंडित किया जाता है । इस सम्बन्ध में **मूलाचार प्रदीप** में कहा है –

संयतानागमान् दृष्ट्वा राजचौर्यादिजाद्भयात् ।
जनैर्यद्दीयते दानमाच्छेद्य दोष एव स: ।।३९८।।

अर्थ – मुनियों के आगमन को देखकर राजा या चोरों के भय से (पंचायत अथवा आहार समिति के भय से) जो लोगों द्वारा मुनियों को दान दिया जाता है, उसे आच्छेद्य दोष कहते हैं । अर्थात् यदि मुनियों को आहारदान

नहीं दोगे तो हम तुम्हारा धन लुट लेंगे (दंडित करेंगे) या तुम्हें (जाति से) निकाल देंगे । इस प्रकार के डर से डरकर आहार देना **आच्छेद्य दोष** है । (पृष्ठ ६१)

साधु तो अतिथि अर्थात् तिथियों के बन्धन से मुक्त और अनियत आहारी होते हैं। **उनका आहार किस तिथि को किसके घर होगा यह निश्चित करने का समाज को अधिकार नहीं है ।**

आचारसार में कहा है –

वेलादिवसमासर्तुवर्षादि नियमेन यत् ।
यतिभ्यो दीनमानान्नं प्राभृतं परिकीर्तितम् ।।८/२८।।

अर्थात् – हम मुनियों को अमुक समय पर आहार देंगे, **अमुक दिन आहार देंगे आदि प्रकार से कालनिर्धारण करके नियत समय पर जो मुनियों को आहार देना है उसे प्राभृत दोष कहते हैं ।**

इसलिए यदि दातार पंचायत के द्वारा निर्धारित दिन प्रसन्नता से भी दान देता है, तो भी वह ग्रहण करना मुनियों के लिए दोषकारक ही है।

साधर्मी श्रावकों को धर्ममार्ग में आगे बढ़ते देखकर हमें प्रसन्न होना चाहिए ।... दूसरी बात यह है कि धर्म में किसी को बंधन नहीं है, आपकी इच्छा है तो द्वारापेक्षण (पड़गाहन) करो । पात्र की वैयावृत्ति (आहारदान) केभाव से ही आपको फल की प्राप्ति हो जाएगी, पात्र मिले या न मिले । (कर्तव्य बोध – पृष्ठ १४–१५)

विघ्न का फल

पंचायत की अनुज्ञा के बिना भी आहारदान करने के उद्देश्य से किसी की अपने घर साधुओं का पड़गाहन करने की इच्छा होने पर भी यदि पंचायत, आहार समिति अथवा अन्य कोई उसे रोकता है – मना करता है तो दान करने की उसकी इच्छा में विघ्न करने से रोकने वाले व्यक्ति को **तत्त्वार्थसूत्र** के

विघ्नकरणमन्तरायस्य ।६/२७।

इस सूत्र के अनुसार अन्तराय कर्म का प्रचुर मात्रा में आस्रव होता है ।

दूसरों के द्वारा किये जा रहें आहारदान की अनुमोदना करने के

बजाय जो उनका किसी भी कारण से विरोध करता है, उस दुर्बुद्धि के लिए आ. वीरसेनस्वामी कहते हैं कि **पात्रदान की अनुमोदना से रहित जीव सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते** । (धवला पुस्तक १, १/१/८५ – पृष्ठ ३२९) अर्थात् **आहारदान का विरोध करनेवाले– किसी का चौका बन्द करने के लिए कहनेवाले लोग स्पष्ट रूप से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं** तथा उससे उपार्जित पाप के फल से उनको भविष्य में अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं ।**रयणसार** में कहा भी है –

खय–कुट्ठ–मूल–सूला, लूय–भयंदर–जलोयर–क्खिसिरो ।
सीदुण्ह वाहिराइ, पूया–दाणंतराय–कम्मफलं ।। ३६ ।।

अर्थात् – क्षयरोग (टी.बी.), कुष्ठरोग, मूल व्याधि, लूता–वातरोग, भगंदर, जलोदर, नेत्र रोग, सिर के रोग, शीत, उष्ण व शीतोष्ण से उत्पन्न सन्निपात पित्तज्वर आदि व्याधियाँ ये सब पूजा–दान आदि धर्म कार्यों में किये गये अन्तराय कर्म का फल है । (पृष्ठ २१–२२)

इतना ही नहीं – जो मूर्ख दान, धर्म, तप, ज्ञान, पूजा आदि में विघ्न करते हैं, वे अवश्य ही नरकों के दुःख भोगते हैं । (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार–४/५०) ठीक भी है – जो अन्य लोगों के धर्माचरण में बाधा डालते हैं उन्हे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य सबके अंतराय कर्म का बंध होता है । (वरांग चरित्र–४/१०३, पृष्ठ ७९)

सम्राट श्रेणिक पूर्वभव में सुमित्र नाम के राजा थे । उस समय उन्होंने सुषेण मुनि का आहार अपने ही घर हो इसलिए सभी नगरवासियों को मुनिराज का पड़गाहन करने से मना कर दिया था । दूसरों को पड़गाहन करने के लिए मना करने से उपार्जित पाप के फल स्वरूप श्रेणिक के भव में उसे सुषेण के जीव कुणिक के द्वारा बन्दीवान् होकर असह्य दुःख भोगने पड़े थे । (श्रेणिक चरित्र)

अतः कभी भी किसी को चौका लगाने से अथवा पड़गाहन करने से मना नहीं करना चाहिए । अपने घर अथवा किसी विशिष्ट व्यक्ति के घर ही साधु का आहार करवाने के लिए भी ऐसी नीच वृत्ति नहीं करनी चाहिए । साधु का आहार किस दिन कहा होगा इसका निर्णय साधु की विधि पर

और अपने-अपने पुण्य पर छोड़ देना चाहिए ।

अपनी शक्ति के अनुसार नित्य-प्रतिदिन दान देते हुए महामुनियों की जो पूजा की जाती है उसे भी नित्यमह (नित्यपूजा) समझना चाहिए । (आदिपुराण-३८/२९, भाग २ - पृष्ठ २४२)

अर्थात् - **अष्टद्रव्य से पूजा करने के बाद मुनियों का पड़गाहन करने पर नित्यपूजा की पूर्णता होती है ।** इस व्याख्यान के अनुसार **श्रावकों को चाहिए कि वे सब प्रतिदिन अपने-अपने घर के सामने स्वयं पड़गाहन करें और पड़गाहन करनेवाले दूसरे श्रावकों के आहारदान की भी प्रसन्नता से अनुमोदना करें ।** इसप्रकार अनुमोदना करने से उनको कृत के पुण्य साथ-साथ अनुमोदना करने का भी पुण्य मिलता है ।

कीजे शक्तिप्रमाण

आ. पायसागर कहते थे - समृद्धि में दान देने का उतना महत्त्व नहीं है, जितना दारिद्र्य में थोड़ा भी दान देना गौरवपूर्ण हैं । (चारित्र चक्रवर्ती - पृष्ठ ५०९) **सम्पत्ति का अभाव वास्तविक दारिद्र्य नहीं है; सम्पत्ति होकर भी अतिथिसत्कार (दान) नहीं करना ही सच्चा दारिद्र्य है ।** (कुरल काव्य- ९/९)

जिनका जीवन जा रहा, बिना दिये मुनिदान ।
निरर्थक उनका जीना, नहीं धर्म का नाम ।।

प्रश्न - हमारे पास थोड़ी सम्पत्ति है तो दान कहाँ से करें?

उत्तर - भाई ! विशेष सम्पत्ति हो तो ही दान हो ऐसी कोई बात नहीं और तू उसे तेरे संसार के कार्यों में खर्च करता है या नहीं? तो धर्म कार्यों में भी उल्लासपूर्वक थोड़ी सम्पत्ति में से तेरी शक्तिप्रमाण खर्च कर । **दान के बिना गृहस्थापना निष्फल है ।** अरे ! मोक्ष का उद्यम करने का यह अवसर है । उसमें सभी राग न छूटे तो थोड़ा तो राग घटा । मोक्ष के लिए तो सभी राग छोड़ना पड़ेगा । यदि दानादि के द्वारा थोड़ा राग भी घटाते तुझसे नहीं बनता तो तू मोक्ष का उद्यम किस प्रकार करेगा? (श्रावकधर्मप्रकाश - पृष्ठ ९५)

एक महिला ने प्रश्न पूछा था कि मोक्षमार्ग की शुरूआत कहाँ से होती है ? तो आ. भरतसागरजी महाराज ने उसका उत्तर दिया था कि **मोक्षमार्ग की शुरूआत तो तुम्हारे चूल्हे से होती है ।** सब सुनते ही रह गये । तब उन्होंने कहा कि जिस महिला के घर में चूल्हे पर शुद्ध भोजन शुद्ध भावनाओं से आहारदान की भावना से बनाया जाता है उस घर के सदस्यों में देव-शास्त्र-गुरु के प्रति समर्पितता आती है, कषाय कम होती जाती है । अत: महिलायें अपने ही कर्मों से स्वर्ग-मोक्ष का द्वार खोल सकती हैं । एक महिला जैन शास्त्रों में वर्णित नियमानुसार शुद्ध भोजन तैयार कर अपने और परिवारजनों के स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग खोल सकती है । और वही महिला कन्दमूलों को पकाकर नरक और निगोद का द्वार खोल लेती है । (प्रज्ञा प्रवाह - पृष्ठ १२३)

सम्यक्त्व कौमुदी में कहा हैं - घर पर आये हुए शत्रु को भी स्नेहपूर्ण दृष्टि, प्रेमपूर्ण वचन, आसन और शक्ति के अनुसार भोजन-पान देना चाहिये। (सम्यक्त्व कौमुदी-५२५, पृष्ठ २४७) शत्रु के साथ भी जब ऐसा सज्जनोचित व्यवहार किया जाता है तब जगद्बन्धु मुनियों के साथ क्या उससे भी श्रेष्ठ व्यवहार नहीं किया जायेगा ?

उद्दिष्ट त्याग किसका ?

मूकमाटी महाकाव्य : अध्यात्मदृष्टी में कहा है - पापांची करन्सी पुण्यात बदलविण्याचे आहारदान हे महत्त्वपूर्ण साधन आहे. (पृष्ठ १७१) अर्थात् पापों की करन्सी (नोट/संचय) पुण्य में बदलने का आहारदान यह महत्त्वपूर्ण साधन है ।

इसलिए- गृहस्थ अपनी भक्ति के अनुसार साधु के संयम-साधन के अनुकूल आहार कराकर अपने को धन्य मानते हैं । (चलते फिरते सिद्धों से गुरु - पृष्ठ ४९) उसी प्रकार दातार पात्र की बीमारी या किसी भी परिस्थिति के अनुसार मुनिराज को दवा आदि दे सकता है। वैसे भी उद्दिष्टत्याग व्रत दातार के नहीं, मुनियों के होता हैं । (पृष्ठ ५०) फिर भी **श्रावक को पात्र की बीमारी का पता लग जाये और पात्र से बिना कुछ कहे उनके लिए शुद्ध औषधि आदि एवं तदनुकूल आहार बनाता है तो इसमें कोई दोष नहीं है।**

(पृष्ठ ६६)

दिगम्बर मुनि यदि मन-वचन-काय एवं कृत-कारित-अनुमोदना से रहित अर्थात् नवकोटि से रहित होकर 'निर्ग्रंथों के लिए' बने हुए (समादेश) आहार को लेते हैं तो उनके लिए वह आहार 'निर्दोष आहार' है । (पृष्ठ ६८) **ऐसे निर्दोष आहार को ही उद्दिष्ट रहित आहार कहते हैं । इससे हटकर उद्दिष्ट आहार इस शब्द का कुछ भी अर्थ नहीं है ।** (पृष्ठ ७६)

तात्पर्य यही है कि जो मुनि अपरिग्रही हैं, शरीर से मोहरहित हैं, २८ मूलगुणों का उचित प्रकार से पालन करते हैं, उन पर निष्कारण शंका नहीं करके उनका यथोचित विनय करते हुए प्रतिदिन यथाशक्ति आहारदान करना चाहिए । तभी तो पं. रतनचन्द भारिल्ल कहते हैं कि **चार रोटियों के लिए (साधुओं की) परीक्षा नहीं करना चाहिए ।** (चलते फिरते सिद्धों से गुरु - पृष्ठ १४७)

यदि किसी साधु में क्वचित् कोई दोष दिखता भी है तो उन्हें आगम के अनुसार विनययुक्त नम्र व मधुर शब्दों में समझाकर उसका उपगूहन करते हुए वात्सल्य से उनका स्थितिकरण करने का भी यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। यही सम्यग्दर्शन की पहचान, परीक्षा और सच्ची प्रभावना भी है । जो जिनदेव के इस उपदेश को स्वीकार करते हैं उस समय मुहूर्तमात्र के लिए भले ही उन्हें वह उपदेश **कटु**

उपासक संस्कार से ...

शंका :- किस वक्ता के द्वारा दिया गया उपदेश श्रवण करना चाहिये ?

समाधान :- पं. टोडरमलकृत मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है - **जो जिनाज्ञा मानने में सावधान है, उसे निर्ग्रंथ सुगुरु के ही निकट धर्म सुनना योग्य है, अथवा उन सुगुरु ही के उपदेश को कहनेवाला उचित श्रद्धानी श्रावक हो तो उससे धर्म सुनना योग्य है ।**

लगता है किन्तु पश्चात वह हितकर हो जाता है ।

इस बात को अनदेखा करके जो मुनियोंका विरोधी रहता है, उसका शास्त्रज्ञान भी विषके तुल्य है, क्योंकि वह संसारके दुःखोंका ही कारण है । (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा (टीका) - पृष्ठ ३५१)

* * * * *

सर्वाङ्गाज्जनिता तथा सदसि या यातः समानां ततिं
कल्याणी मधुरा जगत्प्रियरमा स्रोतस्विनी ते सुगी ।
संख्यातीतसुरैर्नरैरपि तथा चित्रं! श्रुता प्राणिभिः
सा सम्प्रत्यपि राति बुद्ध-सुविधेः हंसान् मतिं निर्मलाम् ।।

८. उपसंहार

तर्क नहीं कुतर्क

अपनी सुखलोलुपता का समर्थन करने के लिये कदाचित् कोई इन शास्त्रप्रमाणों को चतुर्थ काल की बाते कहकर वर्तमान में इनको अनुपयोगी कहेगा। परन्तु तर्कों के नकली सिक्के से सत्य की सम्पदा खरीदी नहीं जा सकती। जो तर्क आगमविरुद्ध होते हैं, वे वास्तव में तर्क नहीं कुतर्क हैं। जो समीचीन विषयमें कुतर्क कर विसंवाद उपस्थित करता है वह अल्पायुषी होता है, एवं परभवमें नरकादि दुर्गतिमें जाकर दुःख भोगता है। (दानशासनम्-३/१०४, पृष्ठ ६२)

आगम त्रिकाल सत्य है । आगम का अर्थ है - आ याने आप्त (भगवान्), ग याने गणधर और म याने मुनि । इसी क्रम से आये हुए सिद्धान्त को आगम कहते हैं । (प्रज्ञा प्रवाह - पृष्ठ ४२) **आगम, सिद्धान्त ये तो त्रैकालिक सत्य हैं, शाश्वत हैं । इनको कोई मूर्ख ही बदलने की चेष्टा कर सकता है । सत्य को झुठलाने की कोशिश करोगे तो स्वयं झुठलाये जाओगे । सत्य को झूठ और झूठ को सत्य साबित करने के जितने प्रयास हैं वे सभी अनर्थक प्रयास हैं ।** (प्रज्ञा प्रवाह - पृष्ठ ३६-३७)

यथार्थ आगमकथित बात को स्वीकार नहीं करना मान कषाय है ।

पाप कार्यों को न छोड़ना और कही हुई बात को नहीं मानना मान कषाय है। (तत्त्वार्थमञ्जूषा-द्वितीय खण्ड - पृष्ठ ४६६)

इसलिए वेश्या की तरह अल्पकाल आकर्षित करके फिर वंचना करनेवाले उन कुतर्कों को छोड़कर इस वास्तविकता को जानना चाहिये कि ये सभी शास्त्र भी पंचमकाल में ही लिखे गये हैं। अपि च, साधुओं के २८ मूलगुण प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के समय जो थे वे ही २८ मूलगुण अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के समय भी थे और वे ही २८ मूलगुण अब भी हैं तथा पंचमकाल के अन्त तक होने वाले सभी भावलिंगी मुनियों के भी होंगे। इनमें त्रिकाल में भी परिवर्तन नहीं हो सकता।

जिनवाणी की भक्ति

एक बार आचार्य शान्तिसागर महाराज ने कहा था, ''हम एक अक्षर भी आगम के विरुद्ध नहीं बोलते हैं। जिनधर्म जिनवाणी में है। उस जिनधर्म में तुम्हें सर्व पदार्थ प्राप्त होंगे। जिनवाणी के अनुसार प्रवृत्ति करना चाहिए।''

प्राय: देखा जाता है, परिस्थिति देख कर तथा लोगों को अनुरंजित करने के लिए लोगों के मुख से ऐसी बात निकल जाया करती है कि ये शास्त्र पुराने जमाने में लिखे गये हैं, आज की स्थिति दूसरी है। आज वे रचे जाते हैं तो उनका रूप दूसरा होता।

ऐसी आगम के विषय में आचार्य महाराज की श्रद्धा नहीं थी। उनकी अविचल श्रद्धा थी कि **जो कुछ आर्षोक्त आगम में लिखा है, वह सर्वज्ञ की वाणी होने से पूर्णतया सत्य, निर्दोष तथा अबाधित है।**

आचार्य महाराज का प्राण आगम है, उसके विरुद्ध न वे एक शब्द बोलेंगे, और न विपरीत प्रवृत्ति ही करेंगे। इतने बड़े आचार्य की नम्रता की कोई सीमा है जब वे कहते थे, ''यदि हमें एक बालक भी आगम लाकर बतायेगा, कि हमने भूल की है, तो हम तुरन्त अपनी भूल को सुधारेंगे।''

एक बार महाराज ने कहा था, ''यदि हम आगम के विरुद्ध बोलेंगे, तो दोष लगेगा। इससे हम सदा आगम के अनुकूल ही कहेंगे।'' सत्य महाव्रत की भावना में अनुवीचिभाषण अर्थात् आगम परम्परा के अनुसार

कथन करने का जो उल्लेख आ. उमास्वामी ने किया है, वह आदेश उनके हृदय में सदा विद्यमान रहता था। (चारित्र चक्रवर्ती - पृष्ठ २१२-२१३)

सर्वज्ञके द्वारा धर्मके व्याख्यानमें कहे गये वचन सत्य हैं, इससे भिन्न राग-द्वेषसे दूषित हृदयवाले किसी अल्पज्ञके वचन सत्य नहीं हैं। इसीलिये जिस जीवकी बुद्धि सर्वज्ञके वचनोंमें भ्रमको प्राप्त होती है (अर्थात् शास्त्र पर श्रद्धा नहीं होती है) वह अतिशय पापी है, अथवा वह भव्य ही नहीं है। (पद्मनन्दि पञ्चविंशतिः-७/१, पृष्ठ १३८)

जो मुनि शास्त्रों में और मुनिचर्या में परिवर्तन /सुधार करने की बात करता है, वह दुर्बुद्धि आगम का अविनय करता है और धर्मात्माओं के प्रतिकूल होता है। तथा इन महापापों के कारण अत्यन्त नीच किल्विष जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

ऐसे मुनि को सन्त तरुणसागर प्रश्न करते हैं -

''कौन कहता है कि महावीर 'आउट-ऑफ-डेट' हो गये?''

''महावीर आज भी 'अप-टू-डेट' है।''

(क्रांतिकारी सूत्र - पृष्ठ ६१)

यदि मुनियों के सम्पूर्ण परिग्रह त्याग, शरीरसंस्कार त्याग और यथालब्ध भोजन इनको पुरानी बाते कह कर कोई सुधारक बनना चाहता है तो उसे मुनियों की नग्नता भी चतुर्थ काल की हजारो वर्ष पुरानी बात है ऐसा विचार करते हुए नग्न वेष भी धारण नहीं करना चाहिये। यदि किसीको शास्त्रोक्त आचरण करना पसन्द नहीं है तो मुनि बनने की कोई जबरदस्ती तो है नहीं। परन्तु मुनिपद में रहकर शास्त्रविरुद्ध वर्तन करना, उसका समर्थन और प्रचार करना दुर्गति की प्राप्ति का कारण होने से ऐसा करना यत्किंचित् भी उचित नहीं है, क्योंकि **क्षुद्र लौकिक एवं भौतिक स्वार्थों के लिए सिद्धान्तों को अपनी इच्छा के अनुसार तोड़मोड़ कर प्रस्तुत करना यह अक्षम्य अपराध है।**

कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है -

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।
ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो।।३९८।।

अर्थ – जैन शास्त्रों में कहे हुए आचार को पालनेमें असमर्थ होते हुए भी जो जिन वचनका ही कथन करता है, उससे विपरीत कथन नहीं करता, वह (ही) सत्यवादी है।

भावार्थ – जैन सिद्धान्तमें आचार आदिका जैसा स्वरूप कहा है, वैसा ही कहना । ऐसा नहीं कि जो अपने से न पाला जाये, लोकनिन्दाके भयसे उसका अन्यथा (विपरीत) कथन करे । (पृष्ठ २९६)

महावीर ने जिन जीवन मूल्यों की स्थापना की थी, वे शाश्वत हैं; उन्होंने जिस सत्य का उद्घाटन किया था, वह अनादि अनन्त है । महावीर और उनका दर्शन आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है । (मैं सिखाने नहीं, जगाने आया हूँ – पृष्ठ ७९)

गृहस्थाश्रम का पाप जो फल देता है, मुनिपद मे रह कर किया हुवा पाप उससे भयानक फल देता है । क्योंकि जो जितनी अधिक ऊँचाई से गिरता है, उसे उतनी ही अधिक चोट पहुँचती है। इसलिए तत्त्वज्ञानी को चाहिए कि वह **अपनी मान्यता के अनुसार आगम बदलने का प्रयत्न करने के बजाय आगम के अनुसार अपनी मान्यता बनाए । जिनवाणी–जिनागम की बात सुनना – सुनाना । परन्तु पंचमकाल अथवा परिस्थिति की आड़ लेकर मुनिचर्या में मृदुता लाने की अहितकारी बात न कहना चाहिए और न सुनना चाहिए ।** इसी में सबका कल्याण है।

त्याग नहीं भोग

नौवीं प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक (भी) वस्त्र और भिक्षापात्र को छोड़कर बाकी के समस्त परिग्रहों का त्याग कर देता है । (रत्नकरण्ड श्रावकाचार (उत्तरार्ध)–पृष्ठ ७४०) गणधराचार्य कुन्थुसागरकृत इस कथन को भूलकर जो साधुवेशधारी नॅपकीन, मोबाईल, मोटर आदि परिग्रह रखते हैं, चाहे वे स्वयं अपने पास रखे अथवा संघस्थ श्रावकों के पास रखे, उसमें उनकी मूर्च्छा और स्वामित्व होने से वह उनका ही परिग्रह है। जैसे कोई अपने पास अधिक धन नहीं रखकर बैंक मे रखता है, परन्तु उसका स्वामित्व उसके पास ही रहता है, वैसे ही संघस्थ श्रावकों के पास रखी हुई वस्तुओं का स्वामी वह साधु ही होता है। अपि च, मोटर–

मोबाईल आदि दूसरे के नाम से खरीदकर, अपने आपको निर्दोष दिखाने का नाटक करने से परिग्रह के दोष के साथ–साथ वह मायाचारी के दोष से भी लिप्त होता है।

अनगार धर्मामृत (टीका) में कहा है – छोड़ सकने योग्य सभी प्रकारके परिग्रहोंको छोड़ देना चाहिए। बालकी नोकके बराबर भी छोड़ने योग्य परिग्रहको अपने पास नहीं रखना चाहिए। अपने पास न रखनेसे ऐसा आशय नहीं लेना चाहिए कि स्वयं न रखकर किसी दूसरेके अधिकारमें रख दे जैसा कि **आजकल साधु संघ मोटर रखते हैं और उसे किसी संघस्थ श्रावकको सौंप देते हैं। यह परिग्रहका त्याग नहीं है, उसका भोग है।** (पृष्ठ ३०३–३०४)

त्याग न कर संग्रह करे, विषय भोग संसार ।
अवन्द्य ऐसे संत को, बार–बार धिक्कार ।।

बगुला भगत

तप और चारित्र से चमकने के बजाय पंचम काल और हीन संहनन की आड़ लेकर रोज घी–तेल आदि लगाकर–लगवाकर चमड़ी चमकाने में ही धन्यता माननेवाले एवं ''श्रमणता पाने के उपरान्त किसी भी प्रकार की कमी अनुभूत नहीं होना चाहिए ।'' इस सूत्र के अनुसार रुक्ष–स्निग्ध, ठंडा–गरम, नमक–मसालों से सहित–रहित जैसा मिले वैसा शुद्ध भोजन समता और प्रसन्नता से ग्रहण करने के बजाय चौके में जाकर गरमा–गरम पदार्थ बनवाकर अध:कर्म से आहार उत्पन्न करनेवाले जिह्वालोलुप मनुष्य साधुवेष लेकर ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जिस प्रकार कोई बगुला एक पाँवपर खड़ा होकर निरन्तर भोली–भाली मछलियों को फँसाकर धन्य होता है।

अहो ! कलिकालका यह महान आश्चर्य तो देखो कि ऐसे बगुला भगत अपने आपको सद्गुरु समझकर भोले–भाले लोगों को जोर–शोरसे उपदेश देनेका बढ़िया स्वांग रचाते हैं ।

आचार्य गुणभद्र **आत्मानुशासन** में कहते हैं –

जना घनाश्च वाचाला: सुलभा: स्युर्वृथोत्थिता:।

दुर्लभा ह्यन्तराद्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षव: ।। ४ ।।

अर्थात् – जो उपदेशक वाचाल होनेसे बहुत बोलते हुए भी अर्थहीन अथवा अनर्थकारी ही उपदेश करते हैं (जिनधर्म का उपदेश नहीं देकर कुमार्ग का कथन करते हैं, कुदेव–कुशास्त्र–कुगुरुकी प्रशंसा करनेवाली कथाएँ कहते हैं) वे तो प्रचुर मात्रामें प्राप्त होते हैं किन्तु जो स्वयं मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होकर दयार्द्रचित्त होते हुए अन्य जीवोंका सच्चा कल्याण करनेवाला सदुपदेश (जिनधर्मका कथन) करते हैं **ऐसे सद्गुरु कठिनता से ही प्राप्त होते हैं।** (पृष्ठ ४५) कहा भी है –

गुरवो बहव: सन्ति शिष्य वित्तापहारका: ।
गुरवो विरला: सन्ति शिष्य सन्तापहारका: ।।

अर्थात् – शिष्यों के धन का अपहरण करनेवाले गुरु तो बहुत होते हैं । परन्तु शिष्यों के कर्म रूपी सन्ताप को दूर करनेवाले गुरु बहुत कम ही होते हैं।

अधर्मात्मा

राह दिखाने वाले ही आज गुमराह कर रहे हैं । इस विपरीत परिस्थिति को देखते हुए शब्दों के बादशाह आ. पुष्पदन्तसागर के अंतरंग की पीड़ा धधकते हुए अंगारों का आभास दिलाती हुई इस प्रकार प्रकट हुई थी – **जो अपने आपको धर्मात्मा मानतें हैं, साधु समझते हैं, तथा विषयभोगों के आकण्ठ में डूबे रहते हैं, वे संसार के सबसे ज्यादा खतरनाक लोग हैं। जो अपने आप को धर्मात्मा मानते हैं उन पर जरा–सा पानी का छीटा डाल दो, (तत्काल नॅपकीन से पोछ लेंगे) तब आपको पता चल जायेगा कि वे धर्मात्मा हैं या अधर्मात्मा ? जिनके अन्दर जरा भी सहन करने की क्षमता नहीं आयी है, जो भोगों से मुक्त नहीं हुए हैं उन्हें मैं धर्मात्मा कैसे कहूँ ?** (अध्यात्म के सुमन – पृष्ठ ४१–४२)

जो मुनिवेष धारण करके भी रागभाव को पुष्ट करते हैं, इन्द्रियों के विषयों का सेवन करते हैं, विषय–भोगों से आसक्ति करते हैं वे केवल वेषमात्र से ही मुनि हैं । ऐसे मुनियों के संसार का कभी अन्त नहीं हो सकता । (सज्जनचित्तवल्लभ – पृष्ठ ६)

इसलिए गणधराचार्य कुन्थुसागर कहते हैं – **साधु को विषय–भोगों से सर्वथा विरक्त एवं अलिप्त और असंस्पृष्ट रहना चाहिये । साथ ही आरम्भ और परिग्रह से भी सर्वात्मना दूर ही रहना चाहिये ।** (रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूर्वार्ध) – पृष्ठ १४६)

ध्यान रखिये बन्धुओं ! **जैनागम में सम्यक्चारित्र को ही पूज्य कहा गया है । इसके अभाव में तीन काल में भी पूज्यता नहीं आ सकती ।** (प्रवचन–प्रमेय – पृष्ठ ५६) **आपके गुरु की पहचान आडम्बरों से नहीं है। आपके गुरु की पहचान निरीहवृत्ति एवं निस्पृहभाव से है।** (इष्टोपदेश–सर्वोदयी देशना – पृष्ठ २४४) इसलिए आ. सुविधिसागर कहते हैं – ग्रंथकार मुनि की शोभा ज्ञान से नहीं अपितु चारित्र से मानते हैं । (सज्जनचित्तवल्लभ – पृष्ठ ४) क्योंकि **चारित्र से रहित केवल बाह्य नग्न वेष मात्र से कोई मुनि नहीं कहलाता ।** (पृष्ठ ५)

आचार्य तीर्थंकर वाणी के प्रसारक, अनेकान्त के प्रेमी तथा पापभीरु होते हैं । कही जिनवाणी की प्ररूपणा में स्खलन न हो जाये इसके लिये वे सतत सजग रहते हैं । अत: उनके वचनों को तीर्थंकर की वाणी के समान सत्यतत्त्वप्ररूपक मानना चाहिये । (ज्ञानांकुशम् – पृष्ठ ९१)

हितशत्रु और हितैषी

बृहद् द्रव्यसंग्रह में आचार्य का वर्णन किया है –

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ।।५२।।

अर्थात् – उस आचार्य का ध्यान करो जो दर्शनाचार और ज्ञानाचार की मुख्यता सहित वीर्याचार और श्रेष्ठ तपाचार में स्वयं भी तत्पर रहते हैं तथा अन्य (शिष्यों) को भी लगाते हैं ।

इसलिए आ. सुविधिसागर कहते हैं – आचार्य बनने के बाद अपने रत्नत्रय के साथ–साथ दूसरों के रत्नत्रय को भी निभाना पड़ता है । (अक्षय ज्योति (अक्तुबर २००९) – पृष्ठ २०) आचार्य का आचरण देखकर ही शिष्य आचरण करते हैं । अत: निर्दोष आचारों का परिपालक आचार्य ही

संघ और शासन की मर्यादा का संवाहक हो सकता है । (अक्षय ज्योति – (जूलाई–सितंबर/२००४) पृष्ठ २७) इसलिए – आचार्य ऐसा कोई कार्य नहीं करते कि जिससे निर्ग्रन्थों में ग्रंथियाँ (दोष) उत्पन्न हो । (ज्योर्तिमय निर्ग्रन्थ – पृष्ठ ७४)

वास्तव में अपने शिष्य को परीषह–जय सिखाना, शिथिलाचार से दूर रहने की शिक्षा देना और आत्मानुशासित बनाना; यही आचार्य की सच्ची करुणा व सच्चा अनुग्रह है । (आत्मान्वेषी – पृष्ठ ९७)

परन्तु जिनके कंधोंपर निर्ग्रन्थ मुनियों से आगमानुसार चर्या करवाने की जिम्मेदारी है ऐसे कई आचार्य भी अपने शिष्यों के आगमविरुद्ध क्रियाओंपर अंकुश लगाने के बजाय शिष्यलोभ से बड़ा संघ बनाकर अथवा बहुत दीक्षाएँ देकर बड़ा आचार्य बनने के लालच से ऐसे उन्मार्गगामी शिष्यों को दंडित भी नहीं करते हैं। वे यह विचार नहीं करते हैं कि **सच्चा गुरु वह होता है जो कि शिष्य के दोषों को दूर करके उसे उत्तमोत्तम गुणों से विभूषित करता है।** परन्तु जब गुरु ही भक्तों की गलती पर चुप्पी साध लेगें, तब फिर श्रमण संस्कृति की रक्षा व भक्तों का कल्याण कैसे हो पाएगा ? (दिव्य उपदेश भाग–६ – पृष्ठ १६) जो आचार्य अपने शिष्य के दोषों को देख करके कहता नहीं वह आचार्य उस शिष्य का शत्रु है । (स्याद्वाद केसरी – पृष्ठ २४३)

इसलिए **ज्ञानार्णव** में कहा है –

धर्मध्वंसे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थविप्लवे ।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपप्रकाशने ।।९/१५।।

अर्थात् – जहाँ धर्म का नाश हो, क्रिया बिगड़ती हो तथा समीचीन सिद्धान्त का लोप हो उस जगह समीचीन क्रिया और सिद्धान्त के प्रकाशनार्थ बिना पूछे भी विद्वानोंको बोलना चाहिए क्योंकि यह सत्पुरुषोंका कार्य है। (पृष्ठ ९४)

इस कार्य में उसे कुछ कठोर व्यवहार भी करना पड़े, जो उस समय शिष्य को प्रतिकूल भी दिखता हो तो भी इससे शिष्य नाराज होगा अथवा संघ छोड़कर जायेगा ऐसी चिन्ता करके शिष्य को चरित्रहीन होने से नहीं

बचाता है तो समझना चाहिये कि वह उसका हितैषी नहीं अपितु हितशत्रु ही है।

भगवती आराधना में कहा भी है –

जिब्भाए वि लिहंतो ण भद्दओ जत्थ सारणा णत्थि ।
पाएण वि ताडिंतो स भद्दओ जत्थ सारणा अत्थि ।।४८३।।

अर्थात् – जो गुरु शिष्यके दोषों का निवारण नहीं करता, वह जिह्वासे मधुर बोलने पर भी भद्र नहीं है। और जो गुरु दोषोंका निवारण करता हुआ पैरसे मारता भी है वह भद्र (हितकारी) है। (पृष्ठ ३६८–३६९)

गुणभरिदं जदि णावं दट्ठूण भवोदधिम्मि भिज्जंतं ।
कुणमाणो हु उवेक्खं को अण्णो हुज्ज णिद्धम्मो ।।१४९०।।

अर्थात् – गुणोंसे भरी (मुनि रूपी) नावको संसार–समुद्र में डूबते हुए देखकर यदि कोई उसकी उपेक्षा करता है (उसे बचाने का प्रयत्न नहीं करता है) तो उससे बड़ा अधार्मिक दूसरा कौन होगा? (पृष्ठ ६९५)

संगति

लोगिग सद्धारहिओ चरणविहुणो तहेव अववादी ।
विवरीओ खलु तच्चे वज्जेव्वा ते समायारे ।।३३८।।

अर्थात् – जो श्रमण लौकिक है, श्रद्धारहित है, चारित्रविहीन है, अपवादशील हैं, वह तत्त्व में (साधुत्वसे) विपरीत है, अतः उसके साथ सामाचारी (संसर्ग) नहीं करना चाहिए । अतः मोक्षार्थी श्रमणको अपनेसे गुणाधिक या समान गुण (आचार) वाले श्रमणके साथ ही साधु को संसर्ग रखना चाहिए। (नयचक्को – पृष्ठ १७०–१७१)

अत: जैसा कि **भगवती आराधना** में कहा है –

वासत्थसदसहस्सादो वि सुसीलो वरं खु एक्को वि ।
जं संसिदस्स सीलं दंसणणाणचरणाणि वड्ढंति ।।३५६।।
संजदजणावमाणं पि वरं खु दुज्जणकदादु पूजादो ।
सीलविणासं दुज्जण–संसग्गी कुणदि ण दु इदरं ।।३५७।।

अर्थात् – **पार्श्वस्थ अर्थात् चारित्रमें क्षुद्र यति लाख भी हों तो उनसे एक भी सुशील यति श्रेष्ठ है** जो अपने संगीके शील, दर्शन, ज्ञान और

चारित्रको बढाता है। आपको उसीका आश्रय लेना चाहिए। गाथा में आगत पार्श्वस्थ शब्द जो चारित्रमें क्षुद्र हैं उन सबके उपलक्षणके लिए है।

संयमीजन मुझ चारित्रहीनका तिरस्कार करते हैं अत: मैं पार्श्वस्थ आदि चारित्रहीन मुनियोंके पास रहूँ। ऐसा मनमें विचार नहीं करना चाहिए; क्योंकि दुर्जनके द्वारा की गई पूजासे संयमीजनोंके द्वारा किया गया अपमान श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि दुर्जनका संसर्ग शीलका नाशक है किन्तु संयमीजनों द्वारा किया गया अपमान शीलका नाशक नहीं है। (पृष्ठ २९८)

पांडित्य का दूषण

ये सब बाते बहुत अच्छी हैं। परन्तु बदलती परिस्थिति को देखकर उनमें परिवर्तन करना चाहिये, ऐसा भी नहीं कहना चाहिये क्योंकि श्रमण धर्म सर्वांश एवं सार्वकालिक सत्य है। शाश्वत धर्म में यत्किंचित् भी बदलाव संभव नहीं है। धर्म में बदलाव आंशिक सत्यता का निदर्शक होता है। सच्चा धर्म कभी आंशिक सत्य नहीं होता है। **मिथ्या प्रवृत्ति को दूर करके कल्याणकारी बातों का प्रचार करना ही सच्चा सुधार है।** आज विषयलोलुपी लोग धर्ममार्ग को छोड़कर पतनकारी क्रियाओं में प्रवृत्ति को सुधार का कार्य कहते हैं। **अन्याय पक्ष का पोषण पांडित्य का दूषण है, भूषण नहीं ।**

सर्वज्ञ के द्वारा भाषित पदार्थों में संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रूप परिणाम का नाम मिथ्यात्व है । (मूलाचार पूर्वार्ध – पृष्ठ २००) इसलिए कहा है – जैन मुनि अपनी बात नहीं कहता । जो अपने मन की बात कहता है, वह जैन साधु नहीं हैं । जैन मुनि अपनी बात नहीं, जिनेन्द्र भगवान की बात कहता है । (आ. शान्तिसागर चरित्र – पृष्ठ ६८)

जो लोग स्वयं के लिखे (और कहे) हुए को तो सत्य मानते हैं और पूर्वाचार्यों की बातों को गलत ठहराते हैं ऐसे लोग नि:संदेह जैन संस्कृति का ह्रास करने वाले हैं । (प्रज्ञा प्रवाह – पृष्ठ ५)

क्या जमाना खराब है ?

एक दिन महाराज के सामने यह चर्चा चली कि आज का जमाना

खराब है, शिथिलाचार का युग है। पुराना रंग ढंग बदल गया, अत: महाराज को भी अपना उपदेश नये ढंग का देना चाहिए ।

महाराज बोले – ''**कौन कहता है जमाना खराब है। तुम्हारी बुद्धि खराब है, जो तुम जमाने को खराब कहते हो । जमाना तो बराबर है।** सूर्य पूर्व में उदित होता था, पश्चिम में अस्त होता था, वही बात आज भी है। अग्नि उष्ण थी, जो आज भी उष्ण है। जल शीतल था, सो आज भी शीतल है। पुत्र की उत्पत्ति स्त्री से होती थी, आज भी वही बात है। गाय से बछड़ा पहले होता था, यही नियम आज भी है । इन प्राकृतिक नियमों में कोई भी अन्तर नहीं पड़ा है, इससे **अब जमाना बदल गया है,** यह कहना ठीक नहीं है। जमाना बराबर है। **बुद्धि में भ्रष्टपना आ गया है। अत: उसे दूर करने को / स्वच्छ करने को, पापाचार के त्याग का उपदेश देना आवश्यक है।** '' (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ १२७) **''समीचीन धर्म – सत्य की परम्परा अनादि–अनन्त होती हैं । उसे देश–काल की परिधि में बाँधा नहीं जा सकता ।''** (देवनन्दि उवाच – पृष्ठ १९८) इस सत्य का सबके सामने प्रकाशन होना नितान्त आवश्यक है ।

लोकरुचि नहीं लोककल्याण को देखकर उपदेश

परन्तु जो केवल व्यवहार को ही जानता है और उसका ही उपदेश देता है, उसे शिष्यों को उपदेश देने का अधिकार सर्वथा नहीं माना गया है । (धर्म रत्नाकर–९/१८, पृष्ठ १६६)

आचार्य सोमदेव ने लिखा है कि ''जो वक्ता श्रोताओं की इच्छानुसार उपदेश देता है, वह कलिकाल के अंग सदृश है। (अर्थात् अतिशय स्वार्थी और दुष्ट है।) मार्गदर्शक सन्मार्ग का दर्शन करने में प्रशंसा प्राप्ति के बदले कल्याण को विशेष रूप से विचारता है।'' (चारित्र चक्रवर्ती पृष्ठ २१४–२१५ से उद्धृत)

आ. शान्तिसागर महाराज आगम के सामने लोकाचार को कोई महत्त्व नहीं देते थे । (पृष्ठ ४८०) क्योंकि **योगसार प्राभृत** में कहा है –

हित्वा लोकोत्तराचारं लोकाचारमुपैति यः ।
संयमो हियते तस्य निर्जरायां निबन्धनम् ।।६/१३।।

अर्थात् – जो योगी लोकोत्तर आचार को छोड़कर लोकाचार को अपनाता है, निर्जरा का कारणभूत उसका संयम क्षीण हो जाता है । (पृष्ठ १२०)

समाज का दुर्भाग्य

यदि आप जैनधर्म और जैन समाज की सच्ची उन्नति देखना चाहते हैं तो आपको सदा शास्त्र-वाक्यों पर दृढ़ रहना आवश्यक है । परन्तु वर्तमान परिस्थिति कुछ ऐसी बन चुकी है कि शास्त्रानुसार मुनिचर्या का पालन एवं गृहस्थ धर्म का सच्चा उपदेश देनेवाला मुनि श्रेष्ठ नहीं माना जा रहा है, बल्कि वे मुनि श्रेष्ठ कहे जा रहे हैं जो मुनिचर्या की बलि चढ़ाकर भी अधिक से अधिक भीड़ एवं पैसा इकठ्ठा कर सकते हैं तथा खर्च कर सकते हैं । **समाज में ज्ञान और संयम के बजाय भीड़और पैसा इकठ्ठा करने की क्षमता के आधार पर साधुओं का मूल्यांकन किया जा रहा है, यह समाज का दुर्भाग्य ही समझना चाहिये ।**

यथार्थ में तो पुण्यशाली वे नहीं जो भौतिक द्रव्यों को प्राप्त कर उनके उपयोग में ही अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को नष्ट कर रहे हैं । वे जीव तो नवीन पापकर्म का ही बंध कर रहे हैं । पुण्यशाली वे हैं जो अपनी आत्मा को रत्नत्रय धर्म (तप एवं त्याग) से पवित्र कर रहे हैं । (तत्त्वसार तत्त्वदेशना – पृष्ठ ८)

मिथ्यादृष्टि

कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है –

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइ संजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ।।३१८।।

अर्थ – जो दोषसहित देवको, जीवहिंसा आदिसे युक्त धर्मको और **परिग्रहमें फँसे हुए गुरुको मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ।**

भावार्थ – **जो अपनेको साधु कहते हैं किन्तु जिनके पास हाथी, घोड़े (मोटर आदि वाहन), जमीन-जायदाद और नौकर-चाकर वगैरह विभूतिका ठाट राजा-महाराजाओंसे कम नहीं होता, ऐसे**

परिग्रही महन्तोंको धर्मगुरु मानता है, वह नियमसे मिथ्यादृष्टि है। (पृष्ठ २२५-२२६)

पात्रकेसरी स्तोत्र-४१ में कहा है – जिनमत में वस्त्र, पात्र आदि परिग्रह का ग्रहण निषिद्ध है । असमर्थ लोगोंने सुखकारक मानकर उसके ग्रहण की कल्पना की है । शास्त्रों में स्पष्ट रूप से उल्लिखित इन बातों को जो स्वीकार नहीं करता उसके लिए **भगवती आराधना** में कहा है –

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं ।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठि मुणेयव्वो ।।३८।।

अर्थात् – आगम में कहा एक भी पद वा अक्षर जिसे नहीं रुचता, शेष शास्त्र में रुचि-श्रद्धा होते हुए भी निश्चय से उसे मिथ्यादृष्टि ही जानना। (पृष्ठ ७६)

उसके लिए **लब्धिसार** में कहा है –

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसो जहा जुरिदो ।।१०८।।

अर्थ-मिथ्यात्व का वेदन करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धानवाला होता है । जैसे ज्वर से पीड़ित मनुष्य को मधुर रस नहीं रुचता है वैसे ही मिथ्यादृष्टि को धर्म (शास्त्रानुसारी उपदेश और आचरण) नहीं रुचता । (पृष्ठ ९६)

सर्प डस्यो तब जानिये रुचिकर नीम चबाय ।
कर्म डस्यो तब जानिये जिनवाणी न सुहाय ।।

जो सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे धर्म और जिनवचनमें सन्देह करता है वह मिथ्यादृष्टि है । (कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा-३२३ – पृष्ठ २२९)

अश्रद्धानका एक कण भी आत्मा को दूषित करता है । (भगवती आराधना – पृष्ठ ७६) आगम प्रमाण पर श्रद्धा होना ही सम्यग्दर्शन का लक्षण है । इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव शास्त्रों में संपूर्ण श्रद्धा रखता ही है। किन्तु जो मनुष्य शास्त्रों पर श्रद्धा करने के बजाय उनका खंडन करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है उसे नरकायु का आस्रव होता है । **तत्त्वार्थसार** में कहा है –

जिनस्यासादनं साधु समयस्य च भेदनम् ।। ४/३२ ।।
आयुषो नारकस्येति भवन्त्यास्रव हेतवः ।। ४/३४ ।।

प्रभावना

शुभ दीक्षा लेकर बहुदोषपूर्ण क्रोध, मान, माया, लोभसे आरम्भ और परिग्रहसे सम्बन्ध नहीं रखूँगा । (भगवती आराधना (टीका)–१८२८, पृष्ठ ८१६) इस संकल्प को भूल कर जो साधु बाह्य प्रपंचो में संलग्न हैं वे लोकोत्तर (मुनि) पद को प्राप्त करके भी लौकिक रूप हैं। **स्वपद प्राप्ति का एकमात्र भेष जिनमुद्रा है । उसे प्राप्त कर नेता–अभिनेताओं के तुल्य व उनमें ही नहीं लगाना चाहिए ।** (स्वानुभव तरंगिणी – पृष्ठ ४०)

कहा भी है – विज्ञापन वह करते हैं जिन्हें अपनी साधना पर विश्वास नहीं होता है । (अमृत कलश – पृष्ठ १७८) ऐसे प्रचारक व्यक्ति से कभी धर्म की प्रभावना नहीं हो सकती । प्रभावक वही होता है, जो स्वयं धर्म से प्रभावित हो । (पुरुषार्थ देशना – पृष्ठ १०५)

धर्म दिखावा, आडंबर, चमत्कार में नहीं है, वह आत्मा में जन्मे विश्वास में है और कहीं नहीं । (विद्याधर से विद्यासागर – पृष्ठ १/११५) इसलिए **धर्म की प्रभावना शास्त्रोक्त चर्या करने से ही होती है, न कि पत्रिकाएँ, फ्लेक्स, सर्वधर्मसंमेलन, सड़कों पर प्रवचन आदि बड़े–बड़े आडम्बर करके विशेष खर्च करने से ।**

भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ) में कहा है –

न संस्तरो भद्र ! समाधिसाधनं
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं
विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ।।२३।।

अर्थात्– संस्तर, पूजा, संघ–सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ।

अतः ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिष्ठा–प्रसिद्धि से साधु की पहचान नहीं हुआ करती । जो व्यक्ति बाह्य प्रभावना मात्र को देखकर प्रभावित हो जाते हैं वे अभी व्यक्ति की परीक्षा से अनभिज्ञ हैं । अभी उन्हें अध्ययन करने की आवश्यकता है । (स्वानुभव तरंगिणी – पृष्ठ ६०)

प्रभावना का विरोध नहीं है, किन्तु प्रभावना के नाम पर त्याग और अपरिग्रह के सिद्धान्तों की बलि चढ़ाने को विरोध है । सनातन जैन धर्म

की वास्तविक प्रभावना परिग्रह के त्याग की पूजा से ही हो सकती है, लौकिक हानि–लाभ का खाता देखकर व्रतों के प्रति अश्रद्ध और मूढ़ता–ग्रस्त जनों के साथ समझौते करके नहीं । सिद्धान्त में समझौते की कोई गुंजाइश नहीं होती ।

आ. पुष्पदन्तसागर उवाच – सत्य अकेला होता है इसलिए सत्य के संघठन नहीं होते। झूठ के संघठन होते हैं, इसलिए वह भीड़ के साथ रहता हैं । सत्य बहुमत की अपेक्षा नहीं रखता, आचरण और अनुभूती की अपेक्षा रखता है । (अमृत कलश – पृष्ठ २०१) तथापि सम्प्रति में कतिपय विद्वान् विपरीत आचरण कर रहे हैं । वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं । शायद उनकी ऐसी मान्यता हैं कि शास्त्र हमारे लिए नहीं, दूसरों के लिए हैं । (प्रश्न आज के – पृष्ठ ४३)

शब्द ही नहीं चारित्र भी बोलता है । इसलिए कोजागिरी पूनम, नववर्षदिन, होली आदि मनाना, आनन्दयात्रा, प्रश्नमंच, कविसंमेलन, गरबा, भक्तों से हास्यालाप, व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा मनोरंजन के स्थानों को भेंट देना, व्यापारिक–सांसारिक विषयों पर चर्चा, मंत्र–तंत्र–यंत्र, वास्तुशास्त्र, मंदिर के बजाय सडकों पर प्रवचन करना, प्रवचन के नाम पर जैनेतरों की कहानियाँ बोलना आदि दुष्कर्मों से लोग जोड़ने के इच्छुक साधुवेषधारियों के लिये मुनि नमिसागर महाराज का वक्तव्य चिन्तनीय हैं । उन्होंने कहा था – "जो स्वयं धर्म से पतित होकर तथा उसे (अर्थात् धर्म को) दूर फेंक कर दूसरे के कल्याण की बात सोचते हैं, वे भूल में हैं । स्वयं धर्म पर आरूढ़ होकर ही जिनधर्म की प्रभावना हो सकती है ।" (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ५२२)

सम्यग्दर्शन के शेष सात अंगों को भूलकर केवल प्रभावना की ही टिमकी बजाने के इच्छुक गृहस्थों को भी इससे बोध लेकर सन्मार्ग पर चलते हुए सच्ची स्व–पर प्रभावना करनी चाहिए । क्योंकि – **सत्य की प्रभावना तभी होगी, जब तुम स्वयं अपने जीवन को सत्यमय बनाओगे । चाहे तुम अकेले ही क्यों न रह जाओ, जनता सत्य का चुनाव अपने आप कर लेगी ।** (समग्र खण्ड ४ (प्रवचनामृत) – पृष्ठ ५१)

प्रभावना का उपाय

जिनधर्म की प्रभावना का एक उपाय जिनधर्म के तत्त्व और उनका वास्तविक स्वरूप जन-जन तक पहुँचाना यह है । जिनवाणी का अभ्यास एवं प्रसार सभी के लिए अत्यन्त कल्याणकारी है । इसलिए **समाज के विद्वानों, कार्यकर्ताओं तथा दानियों को ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे अल्प अथवा उचित मूल्य में यथार्थ तथा मनन करने योग्य साहित्य का प्रकाशन सम्भव हो सके तथा वह सर्वत्र सुलभता से उपलब्ध हो सके।**

अतः हे भव्यात्मन् ! प्रवचन भक्ति करना सीखो, प्रवचन नहीं ।

(श्रुताराधना (२००८) - पृष्ठ ६६)

आध्यात्मिक-सैद्धान्तिक प्रवचन करने के बावजूद भी संयम को ग्रहण नहीं करता (उसका पालन नहीं करता) वही संसार का सबसे बड़ा महामूर्ख हैं । (अमृत कलश - पृष्ठ १६१-१६२)

आ. विभवसागर भी गुरुमंत्र देते हैं - यदि आप प्रतिष्ठा चाहते हैं तो धनवान नहीं धर्मवान बनिये । (गुरुमंत्र - पृष्ठ २३)

गिरगिट

वास्तविक देखा जाये तो **आचरण की पवित्रता ही विचारों की पवित्रता है।** मलिन जीवन दूसरों को क्या प्रकाश देगा? यह बात निर्विवाद सत्य है कि **स्वयं के जीवन में त्याग और सादगी उतारना ही दूसरों को त्याग और सादगी का उपदेश देना है। जिसके अपने जीवन में ये बातें नहीं हैं ऐसा चारित्रहीन व्यक्ति प्रभावना करने के लिए अपात्र है।**

आ. वीरसागर महाराज के शब्दों में -

पण्डिताई माथे चढ़ी, पूर्व जन्म का पाप ।
औरों को उपदेश दे, कोरे रह गए आप ।।

(आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ - पृष्ठ ३/५०)

प्रसिद्धि के व्यामोह से सन्मार्ग को भूलकर तथा आकर्षक शब्दों का मायाजाल फैलाकर अज्ञानी लोगों में चकाचौंध उत्पन्न करने में लगे हुए

ऐसे स्व-पर घातक वक्ता के प्रति आ. विद्यासागर विरचित **तोता क्यों रोता** ? इस कवितासंग्रह की **'गिरगिट'** यह कविता अतिशय समर्पक है -

जिस वक्ता में
धन-कंचन की आस और
पाद-पूजन की प्यास
जीवित है,
वह
जनता का जमघट देख
अवसरवादी बनता है ।
आगम के भाल पर
घूँघट लाता है,
कथन का ढंग
बदल देता है,
जैसे झट से
अपना रंग
बदल लेता है
गिरगिट ।

(कवितासंग्रह - तोता क्यों रोता?)

इसलिए नीतिकार कहते हैं -

बहुगुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो ।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ।।

अर्थ - जैसे उत्कृष्ट मणिसहित भी सर्प लोक में विघ्न ही करने वाला है, वैसे ही वक्तृत्वशैली, मनोज्ञता आदि गुण और बहुत ज्ञान का स्थान होने पर भी शास्त्र विरुद्ध भाषण करने वाला वक्ता भी त्याज्य ही है ।**य

इसलिए **अष्टपाहुड** में कहा है -

तेवि य भणामिहं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं ।
बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो ।।

(भावपाहुड–१५५)

अर्थात् – मैं उन्हीं को सत्पुरुष अथवा मुनि कहता हूँ जो शील संयम तथा गुणोंके द्वारा परिपूर्ण हैं । **जो (परिग्रह, अध:कर्म, प्रसिद्धि की इच्छा, सुखशीलता आदि) अनेक दोषोंका स्थान है वह तो श्रावक के भी समान नहीं है ।** (पृष्ठ ५४९)

इतना ही कहना है कि...

अपने जीवन को आगमनिर्दिष्ट मार्ग पर स्थापित करने से ही मुनिराज का जीवन निर्मल बन जाता है । **परन्तु भीड़ की मनोवृत्ति बड़ी विचित्र होती है। वह तो जहाँ और जिधर मुड़ गई सो मुड़ गई। सूक्ष्म सत्य की बात तो बहुत दूर, भीड़ स्थूल तथ्यों के तह में भी नहीं जाती। यही कारण है कि वह अक्सर प्रचार का शिकार हो जाती है। प्रचार से सहजत: प्रभावित होने से उसे यह अहसास नहीं होता है कि वह जिसे शरण समझ रही है वहाँ शरण के नाम पर एक धोका है।**

यह पूर्ण सत्य है कि जैन दर्शन अपनी विभूति (धन–संपत्ति) के कारण जगत्वन्द्य नहीं हैं, अपितु निर्दोष संयम और चारित्र के माध्यम से जगत्वन्द्य है । आडम्बरों से कभी श्रमण संस्कृति की रक्षा (और प्रभावना) हुई है, न होगी। **यह धारणा गलत है कि वर्तमान में चरणानुयोग में मृदुता लानी चाहिये ।**

उन शिथिलाचारियों से इतना ही कहना है कि यदि आपका सामर्थ्य नहीं है तो श्रद्धा रखे, परन्तु आगम में विकार को स्थान न दे, यही आपकी श्रमण संस्कृति के प्रति उदारता होगी । (स्वानुभव तरंगिणी – पृष्ठ ११) जगत् पूज्य जिनमुद्रा को धारण करके भी जो आत्मसाधना से परे होकर यश:कीर्ति, पूजा, सम्मान के पीछे दौड़ रहा है, भोग–भावना में जी रहा है, वह साधु होकर भी संसारमार्गी है, उसका कल्याण संभव नहीं है । भो प्रज्ञ! त्रिलोक–वन्दनीय मुनिलिंग को अपमानित मत कर । यदि परिणामों में कालुष्य है, शरीर से पापक्रिया करने की भावना रखता है व शरीर से कुचेष्टाएँ भी करता है, तो हे आत्मन् ! जिनभेष छोड़कर अन्य भेष धारण कर अन्य क्रियाएँ कर । यह सब अरहन्त–भेष में शोभा नहीं देता । अरहन्त

मुद्रा को वन्दनीय ही रहने दे । (स्वानुभव तरंगिणी – पृष्ठ १३)

अमृत कलश में कहा भी है – **साधुत्व का संबंध लोकेषणा–पदेषणा से नहीं स्व से (आत्मकल्याण से) है । (पृष्ठ १९४) इस मार्ग में साधनों की आवश्यकता नहीं है, साधना की आवश्यकता है ।** (प्रश्न आज के – **पृष्ठ १५**)

यह निश्चित है कि यदि मुनिपद की रक्षा करनी है तो परिग्रह और लौकिकता को छोड़ना ही पड़ेगा। क्योंकि जैन दर्शन, श्रमण संस्कृति की पहचान आडम्बरों से नहीं, लोक–सभाओं में भाषणों से नहीं, अपितु आत्मसाधना, अध्यात्मचर्या, स्याद्वाद, अनेकान्त, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैसे निर्मल सिद्धान्तों के अनुसार चलने वाले महापुरुषों के माध्यम से होती है । भीड़ तो मनोरंजन के उद्देश्य से एकत्रित होती है । श्रद्धावन्त भीड़ को देखकर नहीं आते; वे चारित्र, त्याग, तपस्या, साधना, आत्माराधना को देखकर ही आते हैं । ... यथार्थ है, **जिसे श्रद्धेय की दृष्टि से देखने जा रहे हैं हम, वह हमारी श्रद्धा का पात्र भी है या नहीं, इस बात का ध्यान तो रखना ही चाहिए।** (स्वानुभव तरंगिणी – पृष्ठ ५२)

अन्यथा कल कही ऐसा न कहना पड़े –

फूटी आँख विवेक की, लखे न संत–असंत ।
साथ में भीड़ अरु संग, उसका नाम महंत ।।

दीक्षा लेने से दो बाते संभव हैं – शास्त्रानुकूल आचरण करनेसे आत्म कल्याण होकर सद्गति प्राप्त होगी; अन्यथा शास्त्रविरुद्ध मनगढ़ंत कल्पनाएँ करते हुए विपरीत आचरण करने से दुर्गति का भाजन बनना पड़ेगा।

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इत: पिण्याकखण्डकम् ।
दीक्षया चेदुभे लभ्ये, क्वाद्रियन्तां विवेकिन: ।।

अहो विवेकी जनो । आप क्या चाहते हो ? एक ओर श्रेष्ठ चिन्तामणि रत्न के समान स्वर्ग और मोक्ष हैं; और दूसरी ओर जिसमें से

तेल निकाला जा चुका है ऐसी खली के टुकड़े के समान नि:सार और निरर्थक सांसारिक भोग तथा दुर्गति है। इसलिए कहा है –

आगम चक्खु साहू ।

अर्थात् – आगम ही साधु के नेत्र हैं । आगम सबका हित करनेवाला है । आगम ही हम सबका आधार है । (अक्षय ज्योति (जूलाई–सितंबर /२००४) – पृष्ठ २७)

जैसे औषधि में फेरफार करने से रोग दूर नहीं होता है, उसी प्रकार जिन भगवान् के द्वारा बताये गये मार्ग का उल्लंघन करने से कर्मों के रोग का क्षय नहीं होता । (चारित्र चक्रवर्ती – पृष्ठ ३३८) अर्थात् जिनवाणी जिस रूप में कही गयी है, उसे उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए ।

आवाहन

प्राणों को हथेली पर रखनेका सामर्थ्य हो तो जिनमुद्रा स्वीकारिए। ये मोक्षमार्ग है, निरीहवृत्ति, निस्पृहता का मार्ग है । दुनिया के प्रपंचों का मार्ग नहीं है । (इष्टोपदेश–सर्वोदयी देशना – पृष्ठ २४०)

जैन योगियों का मार्ग जगत के मार्गों से अत्यन्त भिन्न है, ऐसा समझना चाहिए । साथ ही उन ज्ञानी विद्वानों को भी इंगित करता हूँ – जो साधुसमाज से लौकिक कार्यों की अपेक्षा रखते हैं । विद्वानों ! **क्या यह (निर्माण का) मार्ग दिगम्बर साधकों का है ?** ... लौकिक कार्यों में साधुओं से किसी प्रकार की इच्छा रख अपनी प्रज्ञा की न्यूनता की पहचान न कराएँ – उन्हें श्रमणाभास (बनने) की ओर न ले जाएँ । **यह मार्ग सामाजिक व राजनैतिक कार्यों से भिन्न है । जैन श्रमणों की वृत्ति अलौकिक होती है । आप जैसे सुधी श्रावक विद्वान् उन्हें लोकाचार में ले जाने का विचार करें–यह उचित नहीं ।** (स्वरूप–सम्बोधन परिशीलन – पृष्ठ १२४–१२५)

सिद्धान्तसारसंग्रह में कहा है – **व्रतियोंके व्रतोंमें दोष लगाना चारित्रमोहनीय कर्मके बन्धका कारण है ।** (९/१४६–१४७, पृष्ठ २२६–२२७) **इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह संयम–धारक को व्रतों से डिगने की बात कभी न कहे।** अन्यथा स्व तथा पर की

निश्चय से दुर्गति हुए बिना नहीं रहती है। **पाप पक्ष का समर्थन करके संयमी का पतन कराने वाले व्यक्ति को यमराज का सगा–संबंधी सोचना उचित है।** कृत–कारित–अनुमोदना में भी समान फल होता है। पापोदय से शास्त्रज्ञ (ज्ञानी मनुष्य) भी इस तत्त्व को भूल जाता है। (आध्यात्मिक ज्योति – पृष्ठ ९५)

लिंग (मुनिवेष) को जिस रूप में कहा गया है उसको उस रूप में आप सुरक्षित नहीं रखोगे तो ध्यान रखना, आर्ष मार्ग आपके हाथों सुरक्षित नहीं है । इस सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष वा परोक्ष समर्थन करने वाला व्यक्ति भी उसी में शामिल माना जायेगा । (श्रुताराधना–पृष्ठ ५६)

काल–परिस्थितियों के अनुसार दृष्टान्त बदल सकते हैं, समझाने की शैली बदल सकती है, भाषा, वेशभूषा, रहन–सहन बदल सकता है, पर मूल सिद्धान्त कभी नहीं बदलते हैं । (मर्यादा शिष्योत्तम – पृष्ठ ३०६) इसलिए– एक बात ध्यान रखना, चाहे कितनी ही मुसीबत आये सुधारवाद के नाम पर, आगमनिष्ठ बनकर रहना । आगम को मोड़ने का दुष्प्रयास कभी मत करना । (पृष्ठ ३५)

उपदेश का अभिप्राय

हमारे पूर्वाचार्यों ने कभी आरम्भ और परिग्रह का समर्थन नहीं किया और न ही वे मार्ग को विकृत करने वालों के प्रति मौन रहे । उन्होंने ऐसे साधुओं का तीव्र विरोध ही किया है । उनका चिंतन इस प्रकार था– **जिन बातों का धर्म से संबंध हैं, उनके विषय में यदि ज्ञानी साधु सन्मार्ग न दिखाये तो स्वच्छंद आचरण रूपी व्याघ्र धर्म एवं धार्मिक जन रूपी हिरणों का भक्षण किये बिना नहीं रहेगा ।**

प्रश्न – गुरु की इस मान्यता का क्या अभिप्राय है?

उत्तर – अपने शिष्य समुदाय को सन्मार्ग का उपदेश देते हुए आचार्यदेव जो अपनी मान्यता या अपना दृष्टिकोण व्यक्त कर रहे हैं उसका अभिप्राय यह है कि **प्रत्येक साधु को अपने–अपने साधुत्व रूपी मन्दिर पर कलशारोहण करने हेतु ख्याति–पूजा और लाभ की**

वांछा का, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहों का, लोकरंजना का, अशुद्ध आहार-पान एवं वसतिका आदि का, (कम्प्युटर, टेप, टीवी, सीडी प्लेअर आदी रागवर्धक उपकरणों) का तथा आगमविरुद्ध आचरण करनेवाले साधुओं की एवं असंयमीजनों की संगति का त्याग कर मन एवं इन्द्रियों का निग्रह करते हुए और चारों आराधनाओं का निरतिचार पालन करते हुए समाधिपूर्वक मरण करना चाहिए। (मरण कण्डिका - पृष्ठ ११२)

सद्गुरु का वास्तविक रूप, स्वरूप और कार्य जब जक समाज की समझ में नहीं आयेगा तब तक वह जनकल्याण और प्रभावना के नाम पर अपनी तुंबड़ी भरने में रत कुगुरुओं के जाल में फँसा रहेगा और शास्त्रानुसार आचरण करने वाले सद्गुरुओं की उपेक्षा करते हुए दुर्गति की ओर ही गमन करता रहेगा । **धवला पुस्तक १** में कहा है -

प्रमाणनयनिक्षेपैः योऽर्थान्नाभिसमीक्ष्यते ।
युक्तं चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं च युक्तवत् ।।

अर्थात् - जो पदार्थ प्रमाण, नय और निक्षेप के द्वारा सम्यक् रीति से नहीं जाना जाता है, वह पदार्थ युक्त होते हुए भी अयुक्त की तरह प्रतीत होता है और अयुक्त होते हुए भी युक्त की तरह प्रतीत होता है ।

वर्तमान परिस्थिति में सद्गुरु और कुगुरु के विषय में सर्वत्र यही हो रहा है । इसलिए **तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार** (१/३२-११६, पुस्तक ४) में कथित **'वादीको दोनों कार्य करने चाहिये । अपने पक्षका (सद्धर्मका) साधन करना और प्रतिपक्ष (कुधर्म) में दूषण उठाना- उसका खंडन करना'** इस नीति के अनुसार **विश्वहितकारी जिनधर्म का वास्तविक स्वरूप भव्यजनों के पुनर्ध्यान में आये तथा जिनोपदिष्ट सन्मार्ग से अस्थिर हुए जीव पुनः धर्ममार्ग में स्थिर होकर स्व-पर कल्याण करें** इस पवित्र भावनासे प्रेरित होकर ये **कड़वे सच** एकत्रित किये गये हैं । परन्तु 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे?' इसलिए शास्त्रों का अर्थ करने में अथवा उसे प्रकट करने में यदि मेरी अल्पबुद्धि के

कारण कही कोई भूल हुई हो तो **पापभीरु** विद्वज्जन उसे **जिनवाणी के अनुसार** सुधार लेवे । क्वचित् कोई शब्द कठोर लगता हो तो इतना ही विचार करे कि औषधि रोगी की इच्छा के अनुसार नहीं दी जाती, रोग के अनुसार वैद्य ही उसका निर्धारण करता है ।

उनके प्रमाण क्यों ?

यहाँ कोई कहता है - इसमें जिनके प्रमाण दिए गये हैं उनमें से भी कई साधु स्वयं ही तो मोबाईल, मोटर आदि परिग्रह रखते होंगे । फिर उनके प्रमाण किस लिए दिये ?

उत्तर - जैसे नीचा पुरुष जिसका निषेध करे उसका उत्तम पुरुष के तो सहज ही निषेध हुआ । उसी प्रकार जिनके पास परिग्रह हैं वे ही उसका निषेध करें तब तो सच्चे धर्म की आम्नाय में तो परिग्रह रखने का निषेध सहज ही सिद्ध होता है । अतः उत्तम मुनियों में परिग्रह का संपूर्ण अभाव सिद्ध करना यही उसका प्रयोजन समझना चाहिए ।

शंका- यह तो ठीक है । परन्तु जो यथार्थ मार्ग से विपरीत चल रहे हैं उनको इन तथ्यों के प्रकट होने से दुःख होगा; इसलिए ये कड़वे सच किसलिए प्रगट करे?

समाधान - हम कषायों से किसी की निंदा करे व औरों को दुःख उपजाए तो हम पापी ठहरे; परन्तु जिनेंद्र के उपदेश से विरुद्ध आचरण करने वालों की भक्ति करने से भोले जीवों को मिथ्यात्वादि पापकर्मों का बंध होकर वे दुःखी होंगे, इसलिए करुणाभाव से यह यथार्थ निरूपण किया है । अब कोई सत्य को स्वीकार करने के बजाय दुःखी होकर सत्य का विरोध करे तो हम क्या करें ? जैसे - मांस-मदिरा आदि के सेवन से होनेवाली हानियों को कहने से मांस-मदिरा के व्यावसायिक दुःखी हो तथा खोटा-खरा पहचानने की कला बतलाने से ठग दुःखी हो तो कोई क्या करें ? इसी प्रकार यदि सुखशील साधुओं को बुरा लगने के भय से समीचीन धर्मोपदेश न दे तो जीवों का भला कैसे होगा ? इसलिए **कड़वे सच** का प्रकाशन आवश्यक है ।

क्वचिद् धर्मवशाद् ग्राह्यं   हिताप्रियं महात्मभिः ।
वचनं धर्मसिद्ध्यर्थं विपाके केवलं हितम् ।।१२९।।

अर्थात् – **महात्मा लोग कभी–कभी धर्म के निमित्त से होनेवाले अप्रिय किन्तु हितकारी वचनों को धर्म की सिद्धि करनेवाले और ग्रहण करने योग्य समझते हैं क्योंकि ऐसे वचनों का अन्तिम फल आत्मा का हित होता है ।** (मूलाचार प्रदीप – पृष्ठ १९) इसलिए –

शासनमर्हतां प्रतिपद्यध्वं मोहव्याधि वैद्यानाम् ।
ये मुहूर्तमात्रकटुकं पश्चात्पथ्यमुपदिशन्ति ।।
(मुद्राराक्षस–४/१८)

अर्थ : वैद्यरूपी अरिहन्तों के उपदेश को स्वीकार करो, क्योंकि वे मोहरूपी व्याधि को निवारण करनेवाले वैद्य हैं । **मुहूर्तमात्र के लिए भले ही उनका वह उपदेश कटु लगता है किन्तु पश्चात् वह हितकर हो जाता है ।**

परन्तु जैसे किसी जन्मजात दरिद्री को चिन्तामणि रत्न प्राप्त हो और वह उसे ग्रहण न करे अथवा कोढ़ी को अमृत के समान इक्षुरस प्राप्त हो और वह उसे प्राशन न करे; वैसे ही सग्रन्थता और अधःकर्म में रत साधु और उनके भारी खर्चों के बोझ से पीड़ित गृहस्थ **कड़वे सच** रूपी सन्मार्गदीपक प्राप्त होने पर भी यदि इसके निर्मल प्रकाश से अज्ञान अंधकार से मुक्ति पाने के बजाय शास्त्रविरोधी दुष्कर्मों में ही रत रहते हैं तो उनके दुर्भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ? केवली भगवान उनके प्रदीर्घ संसार को देख रहे हैं, ऐसा समझना चाहिये ।

बालानां हितकामिनामतिमहापापैः पुरोपार्जितैः
माहात्म्यात्तमसः स्वयं कलिबलात् प्रायो गुणद्वेषिभिः ।
न्यायोऽयं मलिनीकृतः कथमपि प्रक्षाल्य नेनीयते
सम्यग्ज्ञानजलैर्वचोभिरमलं तत्रानुकम्पापरैः ।।

अर्थात्–**इस दुःषम कलिकाल के प्रभाव से सद्धर्मद्वेषी लोगों ने पूर्व में उपार्जित महापापों से उत्पन्न मिथ्यात्व के अंधकार से जिनमार्ग को आच्छादित करके मलिन कर दिया है । जो अज्ञानी लोक उस**

अंधकार में भ्रमित हो रहे हैं, अनुकंपा से प्रेरित होकर उनके कल्याण का इच्छुक होकर उसे सम्यज्ञान के वचनों रूपी जल से निर्मल करते हुए प्रयत्नपूर्वक पुनः प्रकाशित किया जा रहा है । (न्यायविनिश्चय)

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरूक्तयः ।।
(आत्मानुशासन –१४२)

जिस प्रकार सूर्य की कठोर भी किरणे कमल को प्रसन्न–विकसित करती हैं उसी प्रकार गुरु के कठोर वचन भी भव्य जीवों के मन को प्रसन्न करते हैं ।

शास्त्राग्नौ मणिवद् भव्यो विशुद्ध भाति निर्वृतः ।
अङ्गारवत् खलो दीप्तो मली वा भस्म वा भवेत् ।।
(आत्मानुशासन–१७६)

इस शास्त्र रूपी अग्नि में तप कर भव्य जीव विशुद्ध हो जाता है और दुष्टजन अंगार के समान तप्त हो जाते हैं अथवा भस्म के समान भस्मीभूत हो जाते हैं ।

यथार्थ धर्मविज्ञान-श्रद्धानमार्गसम्पदः ।
भवन्तु भव्यजीवानां सुवन्द्यधर्मलब्धये ।।

इस कृति के अध्ययन से भव्य जीवों को सुवन्द्य-जगत्पूज्य धर्म की प्राप्ति होने के लिये मुनिधर्म और श्रावकधर्म का यथार्थ ज्ञान होकर उस पर यथार्थ श्रद्धान हो तथा उस रूप से आचरण करने रूप यथार्थ चारित्र रूपी सम्पदा की प्राप्ति हो यह मंगल कामना ।।

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा किन्तु वै
सग्रन्थ्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया ।
वाक्कल्लोल परम्परां प्रचलितां ज्ञानस्य दीप्त्या गवा
गर्तादुद्धरणं कृतं सुनिनदात् तिक्ष्णैरहो! सत्यभिः ।।

अन्तिम मङ्गल

यैः स्वामलेन चरणेन मणिप्रभाभि-
र्लोके प्रकाशितमहो ! जिनधर्ममार्गम् ।
निर्ग्रन्थ-दान्त-समताधर-साधकानि
साधून्नमामि सततं हृदये धरामि ।।१।।

यदर्थमात्रा-पदवाक्यहीनं
मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवि
सरस्वती केवल बोधलब्धिम् ।।२।।

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः
स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने
त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि ।।३।।

श्रीमत् परम गम्भीर स्याद्वादामोघ लाञ्छनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ।।४।।

शुभं भवतु ।

संदर्भ ग्रन्थ

ग्रन्थ/ग्रन्थकार-टीकाकार/हिन्दी अनुवादक * प्रकाशक ✦ संस्करण क्रमांक ▶ सन

अंकाख्यान श्रेयांस कोश-भाग ३ / आर्यिका श्रेयांसमती -/ (संपादक- आ. सुविधिसागर) * ✦ १ ▶ सन २००८

अक्षय ज्योति (मासिक) /आ. सुविधिसागर -/* सुविधि ज्ञान चन्द्रिका ग्रंथ प्रकाशन समिति, औरंगाबाद ✦१ ▶ जूलाई-सितंबर -२००४

अक्षय ज्योति (मासिक) /आ. सुविधिसागर -/* सुविधि ज्ञान चन्द्रिका ग्रंथ प्रकाशन समिति, औरंगाबाद ✦१ ▶ अक्तुबर-२००९

अजितमती साधना स्मृतिगंध /ब्र. कु. रेवती दोशी -/* प्रकाशन समिती, मुंबई ✦१ ▶ सन १९९२

अमितगति श्रावकाचार / आ. अमितगति

अध्यात्म के सुमन/आ. पुष्पदन्तसागर -/ (संकलक - मुनि सौरभसागर) * श्री दि. जैन मन्दिर समिति, सूर्य नगर (गाजियाबाद) ✦ ४ ▶ सन २००४

अनगार धर्मामृत/पं. आशाधर/-पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री * भारतीय ज्ञानपीठ ✦ १ ▶ सन १९७७

अनूठा तपस्वी /आ. सुनीलसागर -/* आ. आदिसागर (अंकलीकर) अंतरराष्ट्रीय जागृति मंच, मुंबई ✦ २ ▶ सन २०११

अंतर-शोधन

अंतर-शोधन/संकलक सुरेशभाई देसाई, सोनगढ- /* जसकरण और अभयकरण सेठिया ✦ ३ ▶ वी. नि. संवत २५३५

अमृत कलश(२)/आ. पुष्पदन्तसागर-/(संकलक-मुनि प्रमुखसागर) * ✦ २ ▶ सन २००३

अमृत कलश/आ. पुष्पदन्तसागर-/(संकलक-मुनि प्रमुखसागर) * ✦४ ▶ सन २००७

अष्टपाहुड/आ. कुन्दकुन्द-श्रुतसागर सूरि/पं. पन्नालाल साहित्याचार्य * भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परीषद (भा. अ. वि. प.) ✦ ३ ▶ सन २००४

अष्टपाहुड(भाषा वचनिका)/आ. कुन्दकुन्द-/पं. जयचंद छाबड़ा * श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, जयपुर ✦ ७ ▶ सन १९९४

आचारसार/आ. वीरनन्दि-/पं. लालाराम शास्त्री * श्री १०८ आ. शान्तिसागर दि. जैन ग्रन्थमाला ✦१ ▶ वी. नि. संवत २४६२

आचार्य शान्तिसागर चरित्र/ गणिनी आर्यिका विशुद्धमती
आचार्य श्री धर्मसागर जी अभिवन्दन ग्रन्थ/-/* दि. जैन नवयुवक मंडल, कलकत्ता ✦१ ▶ वी. नि. संवत २५०८
आचार्य श्री वीरसागर स्मृति ग्रन्थ/-/* दि. जैन त्रिलोक संस्थान, हस्तिनापुर ✦१
आचार्य श्री सन्मतिसागर अभिवन्दन ग्रन्थ
आचार्य समीक्षा/ मुनि सरलसागर -/ * ब्र. हीरालाल खुशालचन्द दोशी ग्रन्थमाला, मांड़वे ✦२ ▶ सन १९९६
आत्मानुशासन/आ. गुणभद्र-आ. प्रभाचन्द्र/* भा.अ.वि.प.✦३ ▶ सन २००४
आत्मानुशासन/आ. गुणभद्र-/ पं. टोडरमल * श्री गम्भीरचन्द जैन एवं पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,जयपुर ✦२ ▶ सन १९९९
आत्मान्वेषी/मुनि क्षमासागर-/* विद्या प्रकाशन मन्दिर, नई दिल्ली ✦३ ▶ सन १९९८
आदिपुराण भाग १/ ---
आदिपुराण भाग-२/आ. जिनसेन-/ पं. पन्नालाल साहित्याचार्य * भारतीय ज्ञानपीठ ✦ ९ ▶ सन २००३
आध्यात्मिक ज्योति/पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर-/* ✦२ ▶ सन २०००
आध्यात्मिक धर्म प्रवचन /आ. विरागसागर -/ * श्री सम्यग्ज्ञान विराग विद्यापीठ, भिण्ड✦१ ▶ सन २००८
आनंदधारा / (प्रवचनकार-आ. विद्यानन्द)-/ मराठी अनुवाद - प्रा. डॉ. मयुरा शहा * गांधी नाथा रंगजी दि. जैन जनमंगल प्रतिष्ठान, सोलापूर ✦ १ ▶ सन २००१
आप्तमीमांसा/ आ. समन्तभद्र
आर्यिका, आर्यिका हैं / गणिनी आर्यिका विशुद्धमती -/* आ. श्री शिवसागर दि. जैन ग्रन्थमाला महावीरजी ✦ २ ▶ वि.सं. २०५३
आर्यिका इन्दुमति अभिनन्दन ग्रन्थ/-/* श्री भारतवर्षीय दि. जैन महासभा ✦ १ ▶ सन १९८३
आहारदान /-/* आ. सिद्धान्तसागर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)✦१ ▶ सन २००७
आहार विधि विज्ञान / आ. देवनन्दि-/ * डॉ. सन्मति ठोले, औरंगाबाद ✦ १ ▶ सन १९९४
इन्दौर चातुर्मास स्मारिका-९९/-/* वीर निकलंक प्रकाशन समिति, इन्दौर ✦१ ▶ सन १९९९
इष्टोपदेश/आ. पूज्यपाद-पं. आशाधर/* श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास ✦ ५ ▶ सन २००५

इष्टोपदेश-सर्वोदयी देशना /आ. पूज्यपाद-/आचार्य विशुद्धसागर * श्री मूलचंद जैन पारमार्थिक ट्रस्ट, इन्दौर ✦२ ▶ सन २००९
उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला / आ. धर्मदास
ए बे-लगाम के घोडे ! सावधान /आ. सुविधिसागर -/* सुविधि ज्ञान चन्द्रिका ग्रंथ प्रकाशन समिति, औरंगाबाद ✦१
ऐसे भी जिया जाता है / मुनि पुलकसागर-/* अ. भा. पुलक जन चेतना मंच ✦५ ▶ दिसम्बर २००४
आचार्य श्री सन्मतिसागर अभिवन्दन ग्रन्थ/-/* ✦ १ ▶
कड़वे प्रवचन भाग - १ / मुनि तरुणसागर -/ * अहिंसा महाकुंभ प्रकाशन ✦१५ ▶ सितम्बर २००७
कदम-कदम पर मंजिल (भाग ४)/मुनि प्रार्थनासागर -/* मुनिश्री प्रार्थनासागर फाउण्डेशन ✦१ ▶ सन २००९
कर्तव्य-बोध/ मुनि निर्णयसागर -/* श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल, जबलपुर ✦ १ ▶
कर्मफल दीपक /आर्यिका प्रशांतमती /-* श्री दि. साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, जबलपुर ✦ २ ▶ सन २०१०
कल्याणकारकम् / आ. उग्रादित्ये - पं. वर्धमान शास्त्री, * श्री गोविंदजी रावजी दोशी, सोलापुर ✦१ ▶ सन १९४०
कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा / आ. स्वामी कुमार कार्त्तिकेय - आ. शुभचन्द्र / पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री * श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास ✦५ ▶ सन २००५
कुरल काव्य / आ. तिरुवल्लुवर * भारतीय ज्ञानपीठ
कुछ तो हैं / मुनि प्रणामसागर -/ * खंडवा ✦१ ▶ सन २००९
कौन कैसे किसे क्या दे ?/आ. पुष्पदन्तसागर-/ * पुष्पगिरि तीर्थ ✦२
क्रांतिकारी सूत्र /मुनि तरुणसागर -/तरुण क्रांति मंच ट्रस्ट, दिल्ली ✦१ ▶ सन २००१
क्रिया, परिणाम और अभिप्राय/पं. अभयकुमार जैन -/* पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर ✦३ ▶ नवम्बर २००४
क्षत्रचूडामणि /आ. वादीभसिंह -/* भा.अ.वि.प. ✦१ ▶
गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती अभिवन्दन ग्रन्थ/-/* दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ✦१ ▶ सन १९९२
गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रन्थ/-/* दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ✦१ ▶ सन १९९६
गुणस्थान विवेचन /ब्र. यशपाल जैन /-* पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

✦ ९ ▶ सन २००६
गुरुमंत्र/आ. विभवसागर–/ ✻ आ. श्री सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति, नागपुर ✦१ ▶ सन २००७
गुरुवाणी पुष्प-४ /आ. विद्यानन्द/–✻ ज्ञानप्रकाश बक्षी, जयपुर ✦ १ ▶ सन १९८८
गोम्मटसार कर्मकाण्ड / आ. नेमिचन्द्र –/आर्यिका आदिमती ✻ आ. श्री शिवसागर ग्रन्थमाला, महावीरजी ✦२ ▶ सन २००३
चलते-फिरते सिद्धों से गुरु/पं. रतनचन्द भारिल्ल –/ ✻ अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परीषद ट्रस्ट, जयपुर ✦१ ▶ सन २००८
चल हंसा उस पार / आ. पुष्पदन्तसागर –/✻ पुष्पगिरि तीर्थ, सोनकच्छ ✦१
चारित्र चक्रवर्ती/ पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर–/✻ श्री भारतवर्षीय दि. जैन (श्रुतसंवर्द्धिनी) महासभा ✦८ ▶ सन २००६
चारित्र चन्द्रिका /आ. चन्दनामती –/✻ दि. जैन त्रिलोक शोध संस्था, हस्तिनापुर ✦१ ▶ सन २००६
चारित्रसार /आ. चामुण्डराय
चौबीस वन्दनमाला / आ. कुशाग्रनन्दी
छहढाला / पं. दौलतराम
जिज्ञासा के समाधान /आ. विमदसागर–/✻ उज्जैन ✦१ ▶ सन२००२
जिज्ञासा समाधान (भाग १)/ पं. रतनलाल बैनाड़ा–/✻ धर्मादय साहित्य प्रकाशन, सागर ✦३ ▶ सन २००९
जिनपूजन रहस्य /पं. रतनचन्द भारिल्ल /–✻ पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर ✦ ६
जिनसरस्वती /मुनि प्रशान्तसागर–/✻ धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सिलामनाबाद ✦४ ▶ सन २००७
जिनेंद्र पूजेचे स्वरूप / ब्र. यशपाल जैन –/✻ पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर ✦१ ▶ सन २००३
ज्ञान के हिमालय /सुरेश जैन 'सरल' – /✻ श्रुत संवर्धन संस्थान ✦ ३ ▶ सन २००८
ज्ञान-गोष्ठी/ कानजी स्वामी–/✻ पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर ✦१ ▶ सन २००३
ज्ञान-महर्षि प्रश्नोत्तरी (धर्म प्रश्नोत्तर)/ आ. कुशाग्रनन्दि–

/✻ रतनलाल टोंग्या, इन्दौर ✦१ ▶ सन १९९९
ज्ञानांकुशम् /आ. योगीन्द्रदेव– आ. सुविधिसागर/✻ लाड़ादेवी ग्रंथमाला, डिमापुर ✦ १ ▶ सन २०१०
ज्ञानानन्द श्रावकाचार/ पं. राजमल्ल –/✻ मुमुक्षु मंडल, भोपाल ✦ ▶ सन

ज्ञानार्णव/आ. शुभचन्द्र–/पं. पन्नालाल बाकलीवाल ✻ श्रीमद् रामचन्द्र आश्रम, अगास ✦६ ▶ सन १९९५
ज्योतिर्मय निर्ग्रन्थ /मिश्रीलाल जैन – /✻ विद्या निधि प्रकाशन, गुना ✦१ ▶ सन १९९४
ज्योति से ज्योति जलती रहे /–/✻ श्री दि. जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति, जयपुर ✦१ ▶ सन १९९७
तत्त्वसार (तत्त्वदेशना) /आ. देवसेन –/आचार्य विशुद्धसागर ✻ जबलपुर ✦४ ▶ सन २००८
तत्त्वार्थ मञ्जूषा-द्वितीय खंड/आर्यिका विज्ञानमती–/✻ दि. जैन समाज, पॉण्डिचेरी ✦१ ▶ सन २००७
तत्त्वार्थवार्तिक भाग २/आ. अकलंक–/पं. महेन्द्रकुमार जैन/भारतीय ज्ञानपीठ ✦१ ▶ सन २००७
तत्त्वार्थवृत्तिः / आ. उमास्वामी – श्रुतसागरसूरि / गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती ✻✦२ ▶ सन २००७
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार-पुस्तक ४/आ. विद्यानन्दि–/पं. माणिकचन्द कौन्देय ✻ श्री आ. कुंथुसागर ग्रन्थमाला सोलापुर ✦२ ▶ सन २००५
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार-पुस्तक ६/आ. विद्यानन्दि–/पं. माणिकचन्द कौन्देय ✻ श्री आ. कुंथुसागर ग्रन्थमाला सोलापुर ✦१ ▶ सन १९६९
तत्त्वार्थसार / आ. अमृतचन्द्र–/ मराठी अनुवाद – पं. नरेन्द्रकुमार भिसीकर ✻ जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦१ ▶ सन १९८७
तत्त्वार्थसूत्र/आ. उमास्वामी
तपस्वी सम्राट /आ. विरागसागर–/ ✻ श्री सम्यग्ज्ञान विराग विद्यापीठ, भिण्ड ✦१ ▶ सन २००७
तिलोय पण्णत्ती-खंड १/आ. यतिवृषभ–/डॉ. आ. ने. उपाध्ये ✻ जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦३ ▶ सन २००७
तीर्थंकर ऐसे बनो/आ. विरागसागर –/(संकलक –आ. विशिष्टश्री + आ. विदुषीश्री) ✻ श्री सम्यग्ज्ञान दि. जैन विराग विद्यापीठ, भिंड ✦१ ▶

तीर्थंकर बनने का मंत्र / गणिनी आर्यिका विमलप्रभा -/* श्री दि. जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति, झोटवाड़ा - जयपूर ✦१ ▶ सन २००७

तोता क्यों रोता ?/आ. विद्यासागर

दशधर्मामृत / आ. देवनन्दि-/* श्री प्रज्ञाश्रमण दि. जैन जनकल्याण संस्थान, अकलूज ✦ १ ▶ सन २००२

दानशासनम् /आ. वासुपूज्य -/ पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री ✦सखाराम नेमचंद ग्रन्थमाला, सोलापुर

दिगम्बर मुनि/बाबु कामताप्रसाद जैन -/* श्री दि. जैन प्रबंधकारिणी सभा, पनागर ✦२

दिव्य उपदेश भाग-६/आ. सिद्धान्तसागर -/* संत धारा प्रचार समिति, इंदौर ✦१

देवनन्दि उवाच / प्रवचनकार-आ. देवनन्दि-/* प्रज्ञाश्रमण दिगंबर जैन संस्कृति न्यास, नागपुर ✦१ ▶ सन २०००

देव भाष्य / आ. देवनन्दि-/* श्री फूलचन्द महावीर प्रसाद जैन चॅरीटेबल ट्रस्ट, गया ✦१ ▶ सन २००१

धर्म के दसलक्षण /डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल /-* पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर ✦७ ▶ सन १९९०

धर्ममंगल (मासिक)/-/* श्रीमती लीलावती जैन, पुणे ✦१ ▶ मई २०११

धर्ममार्गसार (अरनेरिच्वारं) / आ. मुनैप्पाडियार -/पं. मल्लिनाथ शास्त्री * भा.अ. वि. प✦२ ▶ सन १९९६

धर्म रत्नाकर /आ. जयसेन -/पं. जिनदास पार्श्वनाथ फड़कुले * जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर ✦२ ▶ सन २०००

धर्मसंग्रह श्रावकाचार/पं. मेधावि

धर्मोद्योत प्रश्नोत्तरमाला/आ. सकलकीर्ति -/गणिनी आर्यिका विशुद्धमती * ✦३

धवला पुस्तक १/आ. वीरसेन-/ डॉ. हीरालाल जैन * जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦४ ▶ सन २०००

धवला पुस्तक ४/आ. वीरसेन-/ डॉ. हीरालाल जैन * जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦३ ▶ सन २००६

धवला पुस्तक १३/आ. वीरसेन-/डॉ. हीरालाल जैन * जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦२ ▶ सन १९९३

नग्नत्व क्यों और कैसे / मुनि सुधासागर-/* भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला, सांगानेर ✦४ ▶ सन २०००

नयचक्रो / आ. माइल्लधवल -/पं. कैलाशचन्द्र * भारतीय ज्ञानपीठ ✦४ ▶

सन २००७

नयचक्र (बृहद्)/आ. देवसेन/-* माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई ✦१ ▶ वि. सं. १९७७

नियमसार प्राभृत/ आ. कुन्दकुन्द-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती /ग.आ.ज्ञानमती * दि.जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ✦१ ▶ सन १९८५

नीतिसार समुच्चय /आ. इन्द्रनन्दि-पं. गौरीलाल 'पद्माकर' / गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती * भा.अ.वि.प. ✦१ ▶ सन १९९०

नीरव निर्झर/ पं युगल

न्यायविनिश्चय / आ. अकलंकदेव

पद्मनन्दि पञ्चविंशतिः/आ.पद्मनन्दि-/पं. बालचन्द शास्त्री * जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦ ४ ▶ सन २००६

पद्मपुराण भाग २/आ. रविषेण-/पं. पन्नालाल साहित्याचार्य * भारतीय ज्ञानपीठ ✦८ ▶ सन २०००

पद्मपुराण भाग ३/आ. रविषेण-/पं. पन्नालाल साहित्याचार्य * भारतीय ज्ञानपीठ ✦७ ▶ सन २०००

परमात्मप्रकाश /आ. योगीन्दुदेव- श्री ब्रम्हदेव/पं. दौलतराम * श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास ✦३ ▶ सन १९७३

परीक्षामुख /आ. माणिक्यनन्दि -

पार्श्वनाथ चरित्र/आ. सकलकीर्ति-/पं. पन्नालाल साहित्याचार्य * भा.अ.वि.प. ✦१ ▶ सन १९८९-९०

पात्रकेसरी स्तोत्र/आ. विद्यानन्दि

पुरुषार्थ देशना /आचार्य विशुद्धसागर-/ * बाबुलाल जैन, अशोक नगर ✦३ ▶ सन २००९

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय/आ. अमृतचन्द्र-/मराठी अनुवाद-पं. धन्यकुमार भोरे * श्री महावीर ज्ञानोपासना समिती कारंजा ✦२ ▶ सन २०००

प्रज्ञा प्रवाह /प्रवचनकार-आ. देवनन्दि-/* श्री. प्रीतमकुमार राजकुमार शहा, सोलापुर ✦१ ▶ सन २००२

प्रबोधसार / भट्टारकयशकीर्ति -/ पं. लालाराम शास्त्री * रावजी सखाराम दोशी, सोलापुर ✦ १ ▶ सन १९२८

प्रवचन निर्देशिका/ग. आ. ज्ञानमती-/* दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ✦ ४ ▶ सन २०११

प्रवचन-प्रमेय /आ. विद्यासागर -/*जैन साहित्य सदन, दिल्ली ✦ १ ▶ सन१९८६

प्रवचनसार /आ. कुन्दकुन्द-आ. अमृतचन्द्र-आ. जयसेन/पांडे हेमराज * श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास ✦ ५ ▸ सन २००७
प्रवचनामृत-संग्रह /आ. महावीरकीर्ति (संग्राहक - आ. विमलसागर) - * श्री बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद, टीकमगढ ✦१ ▸ सन १९९८
प्रश्न आज के/आ. पुष्पदन्तसागर-/* प्रज्ञ श्री संघ, भिण्ड ✦ ३ ▸ सन २०००
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार/आ. सकलकीर्ति
प्राकृत भावसंग्रह/आ. देवसेन - /एन.के.गोईल * जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦१ ▸ सन २००६
बारह भावना/भूधरदास
बुद्धि साम्राज्य/आर्यिका कुशलवाणी-/* ऋषि-वाणी संघ ✦ १ ▸ सन २००६
बृहद् द्रव्यसंग्रह / आ. नेमिचन्द्र - ब्रह्मदेव
भगवती आराधना/आ. शिवार्य-आ. अपराजित/पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री * जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦४ ▸ सन २००७
भावना द्वात्रिंशतिका / आ. अमितगति
भावसंग्रह (प्राकृत) / आ. देवसेन -/ मराठी अनुवाद - पं. जिनदास शास्त्री फडकुले * दि. जैन समाज सामाजिक व शैक्षणिक संस्था, फलटण ✦ २ ▸ वीर निर्वाण संवत २५३४
मन्दिर / मुनि अमितसागर -/ * चन्द्रा कॉपी हाऊस, आगरा ✦ ▸ सन २००१
मरण कण्डिका/आ. अमृतचन्द्र-/गणिनी आ. विशुद्धमती * श्रुतोदय ट्रस्ट, नन्दनवन-धरियावद ✦१ ▸ सन २००४
मर्यादा शिष्योत्तम /गणिनी आ. स्याद्वादमती-/ * भा.अ.वि.प.✦ १ ▸ सन २००७
महक उठा जीवन / आ. गुणधरनंदी-/✦श्री दि.जैन दिव्य ध्वनी प्रकाशन, जयपुर ✦२ ▸सन १९९७
मानव धर्म (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) /आ. समन्तभद्र -/ पं. भूरामल शास्त्री (आ. ज्ञानसागर) * आ. ज्ञानसागर ग्रन्थमाला, सांगानेर ✦२ ▸सन २००४
मुद्राराक्षस/ विशाखदत्त
मुक्तिपथ की ओर/विद्याभूषण आ. सन्मतिसागर-/* श्री शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रन्थमाला, बुढ़ाना-बोधिगया ✦८ ▸ सन १९९२
मूक माटी/ आ. विद्यासागर-/* भारतीय ज्ञानपीठ ✦८ ▸ सन २००६

मूकमाटी महाकाव्य : अध्यात्मदृष्टी/ सौ. विजया अविनाश संगई -/* श्री अनिलकुमार जोहरापूरकर, नागपूर ✦१ ▸सन २००७
मूलाचार पूर्वार्ध/आ. वट्टकेर-आ. वसुनन्दि/गणिनी आ. ज्ञानमती * भारतीय ज्ञानपीठ ✦४ ▸ सन २००४
मूलाचार उत्तरार्ध/आ. वट्टकेर-आ. वसुनन्दि /गणिनी आ. ज्ञानमती * भारतीय ज्ञानपीठ ✦४ ▸ सन १९९९
मूलाचार प्रदीप /आ. सकलकीर्ति-/पं. विद्याकुमार सेठी * दि. जैन समाज, मारोठ ✦१ ▸ विक्रम संवत २०४२
मेरी स्मृतियाँ / गणिनी आर्यिका ज्ञानमती -/ * दि.जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ✦१ ▸ सन १९९०
मैं सिखाने नहीं, जगाने आया हूँ / मुनि तरुणसागर -/अहिंसा महाकुंभ प्रकाशन, फरिदाबाद ✦१३ ▸ सन २००८
मोक्षमार्ग की पूर्णता /ब्र. यशपाल जैन /-* पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर ✦ १ ▸ सन २००७
मोक्षमार्गप्रकाशक /पं. टोडरमल -/* श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, जयपुर ✦१० ▸ सन १९८९
यशस्तिलक चम्पू (उत्तरखंड) /आ. सोमदेव-/पं. सुन्दरलाल शास्त्री * श्री महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी ✦१ ▸ सन १९७१
योगसार प्राभृत/आ.अमितगति-/जुगलकिशोर मुख्तार * भारतीय ज्ञानपीठ ✦२ ▸ सन १९९९
रत्नकरण्ड श्रावकाचार/आ. समन्तभद्र-आ. प्रभाचन्द्र/पं. पन्नालाल साहित्याचार्य * श्री मुनिसंघ साहित्य प्रकाशन समिति, सागर ✦९ ▸
रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूर्वार्ध)/आ. समन्तभद्र-/आ. कुन्थुसागर * श्री कुन्थुसागरजी चातुर्मास समिति, अहमदाबाद ✦१ ▸ सन १९९७
रत्नकरण्ड श्रावकाचार (उत्तरार्ध)/आ. समन्तभद्र-/आ. कुन्थुसागर * श्री कुन्थुसागरजी चातुर्मास समिति, अहमदाबाद ✦१ ▸ सन १९९७
रत्नकरण्ड श्रावकाचार (प्रश्नोत्तरी टीका)/आ. समन्तभद्र-/गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती * भा. अ. वि. प. ✦४ ▸ सन १९९७
रयणसार/आ. कुन्दकुन्द-/गणिनी आ. स्याद्वादमती * भा.अ.वि.प.✦४ ▸ सन २००३
रत्नमाला / आ. शिवकोटि -/ आ.सुविधिसागर * सुविधि ज्ञान चन्द्रिका प्रकाशन समिति, औरंगाबाद ✦ १ ▸ सन
लब्धिसार/आ. नेमिचन्द्र

वरांग चरित्र / आ. जटासिंहनन्दि –/ प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला ✻ भा. अ. वि. प. ✦ १ ▶ सन १९९६

वर्तमान को वर्धमान की आवश्यकता है /आ. पुष्पदन्तसागर (संकलक – मुनि प्रणामसागर) ✻ राजेन्द्र एवं नरेश जैन, गोंदिया

वसुनन्दि श्रावकाचार / आ. वसुनन्दि –/ आ. सुनीलसागर ✻ हिंदी ग्रंथ कार्यालय, मुंबई – ४ ✦१ ▶ सन २००६

विद्याधर से विद्यासागर/ सुरेश जैन 'सरल' –/ ✻ भगवान ऋषभदेव ग्रंथमाला, सांगानेर ✦२ ▶ सन २००६

विश्व का सूर्य / आ. सुनीलसागर –/ ✻ श्री बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद, टीकमगढ़ ✦२ ▶ सन २०००

वीर वर्धमान चरित / आ. सकलकीर्ति –/ पं. हीरालाल जैन ✻ भारतीय ज्ञानपीठ ✦२ ▶ सन २००९

वैराग्यसार /आ. सुप्रभ –/आर्यिका सुयोगमती ✻ सुविधि ज्ञान चन्द्रिका प्रकाशन संस्था, औरंगाबाद ✦१ ▶ सन २०००

वैराग्य भावना / भूधरदास

शान्तिनाथ पुराण/आ. सकलकीर्ति/पं. लालाराम शास्त्री ✻ भा.अ.वि.प.✦१ ▶ सन १९९८

शिवपथ / आ. आदिसागर (अंकलीकर) – आ. महावीरकीर्ति –(मराठी – क्षु. शुभमती) ✻ ब्रह्मनाथ कुंजवन पुरातन जैन मन्दिर ट्रस्ट उदगाव – कुंजवन ✦ ४ ▶ सन २००८

श्रमण सूर्य /–/✻ आ. आदिसागर (अंकलीकर) आन्तरराष्ट्रिय जागृति मंच, मुम्बई ✦ १ ▶ सन २०१०

श्रावक कर्तव्य /–/✻ आ. सिद्धान्तसागर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ✦१ ▶ सन २००७

श्रावकधर्मप्रकाश/कानजी स्वामी –/लेखक ब्र. हरिलाल जैन/सोनचरण एवं प्रेमचंद जैन ✻ श्री दि. जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ ✦ १ ▶ वि. संवत २०३३

श्रावकधर्मप्रदीप/ आ. कुन्थुसागर – पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री/ पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री/श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, वाराणसी ✦ २ ▶ सन १९८०

श्री नवग्रह शांति विधान /आ. गुप्तिनन्दि –/✻ श्री धर्मतीर्थ, पोस्ट – लायगाँव, जिला औरंगाबाद ✦४ ▶ सन २०१०

श्री रत्नत्रय आराधना /आ. गुप्तिनन्दि ससंघ –/✻ शारदा प्रकाशन, जयपुर ✦३

श्रुताराधना / प्रवचनकर्ता– आ. विद्यासागर–/ ✻ श्री कुण्डलपुर दि. जैन तीर्थक्षेत्र

कमेटी ✦ १ ▶ सन २००८

श्रुताराधना (२००८)/प्रवचनकर्ता– आ. विद्यासागर–/✻ श्री कुण्डलपुर दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी ▶ सन २००९

श्रेणिक चरित्र/आ. शुभचन्द्र–/पं. नन्दलाल जैन /अरिहन्त साहित्य सदन, मुजफ्फरनगर

सज्जनचित्तवल्लभ /आ. मल्लिषेण–आ. सुविधिसागर/✻ सुविधि ज्ञान चन्द्रिका प्रकाशन संस्था, औरंगाबाद ✦१ ▶ सन २००२

सत्य की खोज / डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल –/✻ पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर ✦८ ▶ सन १९९३

संत साधना / मुनि पुलकसागर –/✻ पावन वर्षायोग समिती, नागपुर ✦ ३ ▶ सन २००५

संशयिवदनविदारण/ आ. शुभचन्द्र–/पं. लालाराम शास्त्री ✻ भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता ✦१ ▶ वी. नि. संवत् २४९९

समाधितंत्र / आ. पूज्यपाद

समाधितंत्र अनुशीलन/ आ. पूज्यपाद–आ. विशुद्धसागर/✻ कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर ✦१ ▶ सन २००८

सम्यक्चारित्र चिन्तामणिः/पं. पन्नालाल साहित्याचार्य ✻ वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट ✦१ ▶ सन १९८८

सम्यक्त्व कौमुदी /–/मुनि अमितसागर ✻ चन्द्रा कापी हाऊस, आगरा ✦१ ▶ सन २००१

सर्वज्ञप्रणीत जैन भूगोल / सौ. उज्ज्वला शहा –/ ✻ वीतरागवाणीप्रकाशक, मुंबई ✦१ ▶ सन २०११

सर्वार्थसिद्धि /आ. पूज्यपाद –/ पं. फूलचन्द्र शास्त्री ✻ भारतीय ज्ञानपीठ ✦७ ▶ सन १९९७

सहस्राष्टक चर्चा / आ. चन्द्रसागर –/✻ वीतराग वाणी ट्रस्ट, टीकमगढ ✦६ ▶ सन २००५

सागर प्रवाह /प्रवचनकार–आ. देवनन्दि –/ ✻ श्री. गौराबाई मन्दिर ट्रस्ट, कटरा बाजार, सागर ✻ ✦ १ ▶ सन २००२

सागार धर्मामृत/पं. आशाधर –/ पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री ✻ जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✻ ✦ ४ ▶ सन २०००

सामान्य जैनाचार विचार /–/✻ श्री जैन मुमुक्षु महिला मंडल, देवलाली ✻ ✦२ ▶ सन २००८

सावयधम्मदोहा / आ. देवसेन

सिद्धान्तसारसंग्रह/आ. नरेन्द्रसेन -/ पं. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले ※ जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ※ ✦२ ▶ सन १९७२

सुदृष्टि तरंगिणी (प्रश्नमाला कर्मविपाक)/पं. टेकचन्द्र -/ब्र. यशपाल जैन एवं अन्य ※ श्री वीतराग विज्ञान प्रभावना मण्डल, जयपुर ✦ १ ▶

सुनना सबकी ! करना आगम की !! / आ. अभिनन्दनसागर -/※ प्रदीप जैन + अनिल जैन, रोहतक ✦ १ ▶ सन

सुनहरा अवसर / प्रवचनकार आ. विभवसागर -/※ श्री सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति, नागपुर २

सुन शेरों ! अब तो जागो / आ. सुविधिसागर -/※ सुविधि ज्ञान चन्द्रिका
प्रकाशन संस्था, औरंगाबाद ✦१ ▶ सन १९९४

सुभाषितरत्नसंदोह/आ. अमितगति-/पं. बालचन्द्र शास्त्री ※ जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦३ ▶ सन २००६

सुभाषित रत्नावली /आ. सकलकीर्ति -/ ※ आ. सिद्धान्तसागर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ✦१ ▶ सन २००७

सूक्तिमुक्तावली शतक /आ. सोमप्रभ -/ ※ आ. सिद्धान्तसागर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ✦१ ▶ सन २००७

सोनगढ़ समीक्षा / नीरज जैन -/※ श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ✦ १ ▶ सन १९८८

स्याद्वाद केसरी /गणिनी आर्यिका क्षेमश्री -/※ श्री कुन्थुसागर प्रकाशन संस्थान, अहमदाबाद ✦ १ ▶ सन २००१

स्वयम्भू स्तोत्र /आ. समन्तभद्र

स्वरूप-संबोधन परिशीलन /आ. अकलंक -/ आ. विशुद्धसागर ※ जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर ✦१ ▶ सन २००९

स्वानंद विद्यामृत/प्रवचनकार-आ. विद्यानंद -/ (मराठी अनुवाद) - धन्यकुमार जैनी ※ सौ. शरयु दफ्तरी (जैनबोधक), मुंबई ✦१ ▶ सन २००३

स्वानुभव तरंगिणी/आ. विशुद्धसागर-/※ विशुद्ध युवा मंच, म.प्र.✦१ ▶ सन २००८

स्वानुभूतिप्रकाश (मासिक)/श्री सत्श्रुत प्रसारक ट्रस्ट, भावनगर ✦१ ▶ नवम्बर २००८

हरिवंशपुराण/आ. जिनसेन -/पं. पन्नालाल साहित्याचार्य ※ भारतीय ज्ञानपीठ ✦१० ▶ सन २००६

हाचि साधु ओळखावा ! आचार्यश्री आर्यनंदी/श्रेणिक अन्नदाते -/ ※ सुमेरू प्रकाशन ✦१ ▶ सन २०००)

२४ तीर्थंकर स्तवन

रचयिता - मुनि सुवन्द्यसागर

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
भक्तामर प्रियरवे ! वृषभाय नित्यम् ।
देवार्चिताय जितकर्म महाबलाय,
तुभ्यं नमोऽजित जिनाय जयोऽस्तु नित्यम् ।।१।।
शंप्राप्त संभव जिनाय सुबुद्धि बोधात्,
तुभ्यं नमोऽस्तु भुवनत्रय शंकरत्वात्।
यस्यामलं चरणमस्ति जगत्सुखार्थं,
देवं वरं नित नमाम्यभिनन्दनं तम् ।।२।।
धीदेव ! हे सुमतिदायक ! हे सुवन्द्य !
तुभ्यं नमोऽस्तु भगवन् ! सुमते ! जिनेन्द्र ।
पद्मप्रभस्य तनु पद्ममिवास्ति रम्यं,
तं शोभनं जिनवरं प्रणमामि नित्यम् ।।३।।
ध्वस्तारि ! हे जिन ! सुधीर ! सुपार्श्वनाथ !
त्वमेकमेव मम बंध्वसि नाथ ! लोके ।
चन्द्रप्रभामिव हि यस्य विभाति कान्ति:
चन्द्रप्रभाय हि नमोऽस्तु शुभंकराय ।।४।।
श्री पुष्पदन्त चरणाम्बुज सेवनाय,
भक्त्या नम: सुविधये भवतारकाय ।
श्री शीतलस्य वचनं मधुरं समुद्रं,
संसारवह्नि शमकाय नमोऽस्तु नित्यम् ।।५।।
श्रेयाञ्जिनाय मुनय: प्रणमन्ति भक्त्या,
मुक्त्यङ्गना प्रियतमा ननु ते भवन्ति ।
यो पूजितोऽस्ति समवासवसेनया स,
पूज्यो मया सुमनसा जिन वासुपूज्य: ।।६।।

दिव्यध्वनिः सुविमलं विमलस्य यस्मात्,
तस्याप्तयेऽहमधुना विमलं यजामि ।
हेऽनन्त सौख्यधर ! मेऽपि सुसौख्यकारी,
संपूजयाम्यह मनन्त जिनं हि भक्त्या ।।७।।
चारुं फलं हितकरं हि ददाति धर्मः,
तस्मादहं किल नमामि तमेव धर्मम् ।
शान्ते ! त्वमेव भगवन्नसि नाथ ! लोके,
तस्मादहं जिन ! तमेव नमस्करोमि ।।८।।
मुक्तिश्रिया वरण हेतु सुसिद्ध कान्त !
नित्यं नमोऽस्तु परमेश्वर कुंथवे ते ।
शक्रोप्यकुर्व बहुधाऽरजिनस्य पूजां,
देवाधिदेवमहमद्य भजामि भावात् ।।९।।
मोहाद्रि राजिहर मल्लिजिनाय नित्यं,
बुद्ध्या नमाम्यरि समूह हराय शीघ्रम् ।
पापक्षयाय मुनिसुव्रत देव ! नान्यं,
मर्त्या जना जगति ते नित संश्रितं हि ।।१०।।
स्वामिन्ननल्प फल मस्ति तव स्तुतेर्भो !
तस्मान्नमे ! तव फलप्रद नुतिं करोमि ।
श्रद्धा हि नेमिषु सुवन्द्यपदं ददाति,
हेतुं भवस्य सुविनाशक-मस्ति नेमिः ।।११।।
कल्याणमन्दिर कृपामिव पार्श्वनाथ !
घोरोपसर्ग विजयिन् प्रणमामि नित्यम् ।
वीरस्य संस्तव फलेन सुवन्द्यसिन्धुं,
प्राप्तिं भवेदधिगमस्य सुवन्द्यतायाः ।।१२।।
शब्दस्रजं सकल सौख्यकरं सुवन्द्यं,
जनेभ्य आशु शरणं जिन पादपद्मम् ।
तस्मान्मया भुवननाथ ! सुवन्द्य वाचा,
बुद्ध्या जिनस्तव मिदं रचितं सुशब्दैः ।।१३।।

सिद्धिप्रद स्तोत्र

रचयिता - मुनि सुवन्द्यसागर

कैवल्यता सुफलमस्ति शुभस्य तस्मान्
मोक्षं यदीच्छसि तदा श्रुणु हे मुमुक्षु !
पुण्यं सदा कुरु बलेन जिनाज्ञयाहं
धृत्वेति मानसतले चरणं करोमि ।।१।।
बालोऽपि बुद्धिरहितोऽपि विदेहजानां
वर्तन्ति ये सहजभक्तिवशाज्जिनानाम् ।
सिद्धिप्रदं विमल सौख्यकरं सुवन्द्यं
स्तोत्रं वरं सुरुचिपूर्णमहं करोमि ।।२।।
यः पद्मनन्दिमुपदिष्ट-ममूल्यबोधं
शक्रोऽपि नास्ति कथनाय गुणा अलं तं ।
सीमन्धरं सकल कर्महरं जिनेन्द्रं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।३।।
यस्य स्तुतिः सुफलदायकमस्ति लोके
श्रेष्ठं हि योऽस्ति युगनायक धर्मनाथम् ।
हृद्वासिनं मम सना युगमन्धरं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।४।।
श्री बाहु-तीर्थंकर केवलबोधहस्ता
सम्प्रत्यहो! शिवपथं ननु काशयन्ति ।
तीर्थंकरं निविड कर्मविनाशकं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।५।।
सद्धर्मदीपक हितेश सुबाहुना वै
धर्मः सुखांकुरमिवास्ति हि सुष्ठु गीतम् ।
सिद्धिः कृता हि सुकरा चरणेन येन
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।६।।

अम्बां न योऽभवदसौख्यकरं सुजातं
गर्भेप्यतिष्ठदचलं कमलासने य: ।
योगस्य रोधकरणं ह्युपदिष्ट येन
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।७।।
गर्भावतार समयेऽप्यवधिज्ञ नाथं
देवं स्वयम्प्रभजिनं स्वयमेव बुद्धम् ।
आविष्कृतारुणमिव क्षितिभूषणं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।८।।
धर्मस्य मार्ग जिनदेवकृतं सुवृत्त-
मस्तीति सुष्ठु कथनं वृषभेश्वरस्य ।
चारूपदेशक विभुं वृषभाननं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।९।।
योऽनन्तवीर्य जिन केवलबोधधारी
भूत्वा निरञ्जन रमाधिपति: तपोभ्याम् ।
श्रेष्ठं फलं सुतपस: किल येन यात:
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१०।।
स्वाशोकवृक्षवर शीतल छायया य
आकर्षितं नरसुरासुरनाथ वृन्दान् ।
सूरप्रभं गहन शोक विनाशकं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।११।।
सिंहासनाधिपति-मप्यनिगूहितं तान्
मूर्च्छां विना खलु न पुण्यफलेन बन्ध: ।
एवं प्रबोधक महेश विशालकीर्तिं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१२।।
विद्युत्प्रकाशमिव चञ्चल चामरौघो
दुग्धाब्धि फेनमिव शोभित चारुशोभ: ।
विभ्राजते जगति वज्रधरस्य यस्य
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१३।।

छत्रत्रयोऽमल सुचन्द्रमिवास्ति यस्य
प्रद्योतते त्रिभुवनस्य वशंकरत्वम् ।
चन्द्राननं शरदि चन्द्रमसं समं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१४।।
दिव्यो गभीर वर दुन्दुभिनाद मन्ये
वायुप्रवाह मिलनोद्भव सिन्धुशब्द: ।
यस्यास्ति तं विगतकल्मष भद्रबाहुं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१५।।
पुण्यस्य वृष्टिमिव सुन्दर पारिजात-
मन्दार पाडल सुचम्पक पुष्पवृष्टि: ।
यं सर्वत: पतति नाथ ! भुजङ्गमं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१६।।
आभा रविन्दुनिचयस्य सितेन नष्टं
भामण्डलेन दिन-रात्रि विभाजनं च ।
देवै: प्रपूजित महेश्वरमीश्वरं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१७।।
नेमप्रभेण सकलं सुरनाथवृन्द-
माकर्षितं समयसार रसेन शीघ्रम् ।
धर्मस्य संसदि वरस्वनधारकं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१८।।
यस्य स्वयं परमयेन्द्र उपोढ भक्त्या
वीनस्य किंकरतया सुनुतिं करोति ।
तं वीरसेनजिन नामक वीरसेनं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।१९।।

सर्वात्मनां सकल भद्रकरं महांश्च
भद्रं त्वमेव जिनशासन नायकं च ।
कल्याणकारक सुधेश जिनेश्वरं तं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।२०।।
यस्यामला महिमया मघवा समूहा
गायन्त्यघारि गुरु-देवयशस्य गीता: ।
भूत्वा प्रभावितमहं सततं हि तेन
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।२१।।
स्वस्याजितेन तपसा चरणेन शीघ्रं
घातिक्षयादजितवीर्य सुनामवाप्तम् ।
तं श्रीनिवास पद पद्म-मजितवीर्यं
भक्त्या त्रियोगसहितेन जिनं नमामि ।।२२।।
कल्याणकारिषु वरं स्तवनं पवित्रं
त्रैलोक्यमङ्गल सुखालय कामदोहम् ।
कल्याणकं स्तवमिदं वितनूजिनानां
गीतं मयाक्षयसुखाय सुवन्द्य वाचा ।।२३।।
शक्रेण वन्दित विदेहधरा स्थितानां
स्नेहादभीष्ट जिनसंस्तवनस्य तीव्रात् ।
सन्मङ्गलं स्तवनमेव सुवन्द्यसिन्धु
रन्वर्थसंज्ञमुनिना रचितं सुभक्त्या ।।२४।।
विघ्नौघनाशक जिनेन्द्रगणस्य दिव्यं
सर्वात्मन: सकल मङ्गलकारकं च ।
भक्त्या विनिर्मितमिदं मम बालबुद्ध्या ।
स्तोत्रं भवेत् सुवरदं तु जिनप्रसादात् ।।२५।।

विशेष ज्ञातव्य - श्रद्धा का क्या होगा ?

'मुनिचर्या से संबंधित ''**कड़वे सच**'' इस प्रकार जन-जन में प्रकाशित होने से लोगों के मन में वर्तमान साधुओं के प्रति श्रद्धा नहीं रहेगी'' यह शंका निराधार है । मेरा अनुभव है कि जिन-जिन लोगों ने खुले दिल से मुझसे चर्चा की है उनके मन में सच्चे साधुओं के प्रति अतीव श्रद्धा उत्पन्न हुई है । श्रावकों को समीचीन ज्ञान प्राप्त होने से कही अपनी पोल न खुल जाये इस विचार से **'कड़वे सच'** से वे ही भयभीत हो रहे हैं जो मुनिमुद्रा को विलासितापूर्ण जीवनयापन का साधन बना चुके हैं अथवा मोहनीय कर्म के तीव्र उदय से जिनकी बुद्धि मोहित होने से मुनिचर्या और उसकी गरिमा के प्रति असावधान वा उदासीन हैं । जिन्होंने मुनिमुद्रा को वैराग्यसहित अपनाया है ऐसे पापभीरु और ज्ञानी साधुओं ने तथा विवेकी गृहस्थों ने इस कृति का स्वागत ही किया हैं ।

वैराग्ययुक्त होकर संयमी जीवन स्वीकार करके भी अज्ञान से अथवा दूसरे साधुओं की देखादेखी जिन्होंने परिग्रह का उन्मार्ग अपनाया था ऐसे कई साधुओं ने सूचना दी हैं कि **कड़वे सच** पढ़ने से उनके भ्रम दूर होकर सम्यग्ज्ञान होने से अब उन्होंने नॅपकीन, मोबाईल आदि वस्तुओं का तथा दन्तमंजन आदि व्रतघातक क्रियाओं का त्याग किया हैं तथा शास्त्रोक्त आचरण करते हुए आगम के आलोक में सन्मार्ग पर चलने का सत्संकल्प किया है।

जो सग्रन्थ को भी निर्ग्रन्थ मानते थे ऐसे अनेक गृहस्थ भी कड़वे सच पढ़ने से प्रबुद्ध होकर साधुओं को धन, नॅपकीन, मोबाईल आदि नहीं देने के लिए संकल्पबद्ध हुए हैं । उन लोगों के मन में साधुओं के प्रति पहले अंधश्रद्धा थी; अब उसके स्थानपर ''निर्ग्रन्थ'' मुनियों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हुई है और वह श्रद्धा पहले से भी अधिक दृढ़ हुई है। ज्ञान के द्वारा यथार्थ वस्तुस्वरूप समझ में आने पर श्रद्धा भी यथार्थ बनती ही है ।

अब आवश्यकता है कि शेष साधुवर्ग और गृहस्थ भी उनका अनुकरण करके स्व-पर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होवे ।

- निर्ग्रन्थ मुनि सुवन्द्यसागर

आवाहन

जिनधर्म की प्रभावना का एक उपाय जिनधर्म के तत्त्व और उनका वास्तविक स्वरूप जन–जन तक पहुँचाना यह है । जिनवाणी का अभ्यास एवं प्रसार सभी के लिए अत्यन्त कल्याणकारी है । इसलिए **''समाज के विद्वानों, कार्यकर्ताओं तथा दानियों को ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे अल्प अथवा उचित मूल्य में यथार्थ तथा मनन करने योग्य साहित्य का प्रकाशन सम्भव हो सके तथा वह सर्वत्र सुलभता से उपलब्ध हो सके ।''**

सन्मति ग्रंथमाला की ओर से मराठी/हिंदी भाषा में कई ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना बनाई है । इस कार्य में विपुल धनराशी की आवश्यकता है । जिनवाणी के प्रसार में सहभागी होने के इच्छुक श्रावकों से अनुरोध है कि वे इस सत्कार्य में अपनी ओर से यथासंभव आर्थिक योगदान दे, ताकि जन–जन हितकारी ग्रंथों का प्रकाशन किया जा सके तथा वे अल्प मूल्य में सबको उपलब्ध हो सके ।

हमारे यहाँ मुनिश्री सुवन्द्यसागर विरचित बहुचर्चित कृति

कड़वे सच

उपासक संस्कार, दानोपदेश, हनुमान चरित्र, वृषभोद्धार कथा, इंद्र चरित्र, संत साधना, भद्रबाहू आख्यान, सम्यक्त्व कौमुदी एवं अन्य प्रकाशनों के ग्रंथ भी उपलब्ध हैं ।

: **प्रकाशनाधीन ग्रंथ** :

तमसो मा ज्योतिर्गमय, मेरु–मंदर पुराण, आचारसार

दानराशि भेजने के लिये अथवा ग्रंथ मंगवाने के लिये पता–

✻ आत्मनंदी ग्रंथालय ✻

C/o श्री. सतीश शांतिलालजी बोराळकर, सुलतानपूर,
ता. लोणार जि. बुलडाणा (महाराष्ट्र) मो. : ०९७६६१३१३५१
(Email- satjain.siddhapur@gmail.com)

आदाय व्रतमात्मतत्त्वममलं ज्ञात्वाथ गत्वा तपः
सन्तोषो धनमुन्नतं प्रियतमा क्षान्तिस्तपो भोजनम् ।
क्षुत्तृष्णाभयसङ्गमोहजनितां हित्वा विकल्पावलिं
यत्नाद्येन पुरा स देव सुविधि-र्दोषात् सदा पातु नः ।।

संसारार्णव दुस्तरोऽस्ति निचितैः कर्मैः पुरा प्राणिना
शक्यं नास्त्यपि पारगम्य इति वै भारेण भूत्वा गुरुम् ।
त्यागेनोभयभेदसङ्ग नितरां योऽभूदहो! नौरिव
पापात् पात्वपरिग्रही स सुविधिः तीर्थंकरो निर्मलः ।।

शंखेन्दू सितपुष्पदन्तकलिकां यस्यास्ति दिव्यप्रभां
देवेन्द्रैरपि पूजिताक्षय सुखी दोषैर्विमुक्तात्मकः ।
दिव्यानन्तचतुष्टयैः सुरमया स्वर्मोक्षसन्दायकः
सोऽस्मान् पातु निरञ्जनो जिनपतिः श्री पुष्पदन्तो जिनः ।।

सर्वाङ्गाज्जनिता तथा सदसि या यातः समानां ततिं
कल्याणी मधुरा जगत्प्रियरमा स्रोतस्विनी ते सुगी ।
संख्यातीतसुरैर्नरैरपि तथा चित्रं! श्रुता प्राणिभिः
सा सम्प्रत्यपि राति बुद्ध-सुविधेः हंसान् मतिं निर्मलाम् ।।

भक्ताभक्त-कृपाण-पुष्पनिवहौ लोष्टोऽथवा भास्करं
साम्यं यस्य सदा विभाति जगति श्रेयस्करं भास्वरम् ।
नित्यं श्री सुविधिर्वसेद् हृदि सदा साम्यश्च मे मानसि
आकांक्षास्ति सुवन्द्यसागर मुनेः तस्या भवेत् पूर्णता ।।

११७
३४
७८
३९
१७
१२३
२० क्योंकि – जो किये जाने वाले कार्य का निषेध नहीं करता है तो वह उसका अनुमोदक माना जाता है । (तत्त्वार्थवार्तिक–६/८/९ – पृष्ठ ७११)

मिथ्या मत का निषेध करना अनिवार्य है । जितनी अनिवार्यता सम्यक् मार्ग की स्थापना की है, उतनी ही अनिवार्यता मिथ्या मत के निरसन की होनी चाहिए । (स्वरूप–सम्बोधन परिशीलन –पृष्ठ ५९)

जब अनागम का आप कथन करेंगे, आगम का अपलाप करेंगे, तब तीव्र अशुभ कर्म का आस्रव होगा । अनुवीचि (आगम के अनुसार) भाषण का प्रयोग करने वाला ही समाधि की साधना को प्राप्त करता है । **जो आगम के विरुद्ध भाषण करते हैं, वे वर्तमान में भले ही पूर्व पुण्य के नियोग से यश को प्राप्त हो रहे हो, परन्तु अन्तिम समय कष्ट से व्यतीत होता है, साथ ही भविष्य की गति भी नियम से बिगड़ती है ।** अहो प्रज्ञ! पुद्गल के टुकड़ो के पीछे आगम को तो नहीं तोड़ना ।... जिनवाणी के विरुद्ध आलाप का फल तो दुर्गती ही होगी । (स्वरूप–सम्बोधन परिशीलन– पृष्ठ १०२)

जो व्यक्ति वैभव और विभुतियों से दबा रहता है, वह महान नहीं बन सकता है । (तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा(खण्ड १)– पृष्ठ १९३)

तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (खण्ड १)/ डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री –/* आचार्य शान्तिसागर छानी ग्रन्थमाला, बुढ़ाना+२* सन १९९२ इससे विपरीत जो जीर्ण मन्दिर, जीर्ण संयमी आदि का उद्धार (स्थितिकरण करता है वह पूर्व से भी अधिक पुण्य को प्राप्त करता है । (दानशासनम् –३/१२, पृष्ठ २७)

एक बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि शास्त्राज्ञा के सामने हम और आप जैसे अल्पज्ञ लोगों के द्वारा कल्पित युक्तियाँ–तर्क निर्णय के हेतु नहीं बन सकते । मुनिचर्या हमारी इच्छा के अनुसार नहीं अपितु आगम की आज्ञा के अनुसार चलती है ।

आगम प्रमाण के बिना मात्र युक्ति से खण्डन–मण्डन करना काश के फूल की तरह गन्धरहित होने से बुद्धि की खुजलाहट मात्र है । अपनी बतायी युक्ति भी ठीक नहीं है, क्योंकि वह अप्रामाणिक होती है । (चैतन्य चन्द्रोदय–पृष्ठ